अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक

सौर आषाढ़, १४ शक १८७९ | सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार
वार्षिक मूल्य ५) | एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-४० | 卐 राजघाट, काशी 卐 | शुक्रवार, ५ जुलाई, '५७

अमृत-कण

पेड़ नहीं सेवा करते हैं, सेवा होती रहती है
नदी कभी सेवा करने की, भूले बात न कहती है।
कीट-पतंग-पशु-पक्षी सब, हैं सेवा में लगे हुए
कुत्ते कब कहते, सेवा में, देखो हम हैं जगे हुए ?
फिर मनुष्य क्यों कहता-फिरता, 'वह करता है जनसेवा ?
जब कि चाहता है बदले में नाम-गाम-कपड़ा-मेवा !
दुनिया से अलग धरती के तले
"जड़" पड़ी, तपस्या करती है।
धरती के ऊपर आ वही
फिर रूप अनोखा धरती है।

—महात्मा भगवानदीन

आद्य आचार्य शंकर की अद्वैत-भूमि में !

(महाकवि वळ्ळत्तोळ)

[केरल के महाकवि द्वारा दी हुई संस्कृत-अभिनंदनांजलि। हिंदी-भावार्थ 'युग प्रभात' द्वारा प्रेषित। प्रस्तुत हिंदी पाक्षिक केरल से ही प्रकाशित होता है। —सं०]

सपुण्यशेषासि, इहोपयाते !
विनोबभावेऽत्र विकस्वराक्षी
यत् पश्यसि प्रत्यवतीर्णमेव
श्रीगान्धिदेवं भृगुरामभूमे ! ॥१॥

सर्वोदयाप्त्यै धृतपादयात्र-
स्सन्देशवाही समसृष्टमैत्र्याः
समानशिष्योऽसि गुरोः समग्र-
सत्यस्थितेर्गान्धिमहात्मनस्त्वम् ! ॥२॥

घर्मोष्मभिः केरळदेश एष
प्रशोषिताशेषजलाशयोऽपि
तपोनिधे, तावकतीर्थपाद-
स्पर्शात् परो निर्वृतिमृच्छतीव ! ॥३॥

भूदानयज्ञाध्वचरी विनीत-
बुद्धेर्विनोबस्य पदद्वयीयम्
श्रीशङ्करावाल्यसखी च 'चूर्णी'
प्राप्ते मिथःपावनतां समेत्य ! ॥४॥

ग्रामान् भुनक्तु सहिता समितिः प्रजानां;
सामान्यतामिह भजन्तु कृषिस्थलानि;
किं विस्तरेण वचसां ? क्व विभिन्नभावः
क्वाद्वैतदेशिकयतेरवतारभूमिः ? ॥५॥

केरल भूमि ! तेरा पुण्य अभी सशेष है।
क्योंकि विनोबा भावे जब यहाँ पधारे
तूने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से
महात्मा गान्धी को ही अवतीर्ण देखा !

सर्वोदय की प्राप्ति के लिए पद-यात्रा-
करने वाले और समसृष्टों की मैत्री के
सन्देश-वाहक वे, संपूर्ण सत्य के आग्रही
महात्मा गान्धीजी के उत्तम शिष्य हैं !

गरमी के कारण केरल के सभी जलाशय
सूख गये हैं और इसीलिए हे तपोनिधे,
आपके तीर्थपाद के स्पर्श से मानों वह
अपने को निर्वृत करना चाहता है !

विनीतमति विनोबाजी के भूदान-यज्ञ की
पथ-चारी पद-द्वयी तथा श्री शंकर की
बाल्यकाल-सखी चूर्णी नदी, दोनों ने
परस्पर-भेंट से अपने को पावन कर लिया !

ग्राम-समितियाँ सामूहिक रूप से ग्रामों
का भोग करें। कृषिस्थल सामाजिक हों,
अथवा अधिक कहने की क्या जरूरत ?
कहाँ भेदभाव और कहाँ अद्वैत के
प्रवर्तक यति श्री शंकर की यह अवतार-भूमि ?

सच्चे भक्त का लक्षण !

ग्रामदान तो स्वाभाविक बात है। ग्रामदान होगा, यह ईश्वर बोल चुका है ! परंतु चिंता है, सहधर्मी-कार्यकर्ता मिलने की। घर, शरीर आदि की हरेक की मर्यादा होती है। उन सबको लाँघ कर आगे बढ़ने की वृत्ति होनी चाहिए। क्रांतिकारक वेदकार होता है। वह आगे-पीछे का गणित नहीं करता, वह काम कर डालता है। वह भविष्य को काटता है, भूतकाल को काटता है और वर्तमान में काम करता है ! यही भक्त का सुलक्षण है। गीता में कहा है : 'योग और क्षेम मैं उठा लेता हूँ।' शंकराचार्य ने सवाल पूछा, 'भक्तों का योग और क्षेम भगवान् उठा लेता है, तो दूसरे कार्य कौन चलाता है ? क्या भक्त स्वयं वे चलाने में समर्थ है ?' वह समर्थ नहीं है। भगवान् ही उन्हें चलायेगा, परंतु वह पहचान भी लेता है कि भगवान् ही तो सब चला रहा है एक शख्स घोड़े पर बैठा है। सामान भी उस पर है। पर वह चाहता है कि घोड़े पर ज्यादा भार न हो ! तो वह घोड़े पर बैठे-बैठे अपने सिर पर सामान उठा लेता है ! पर इससे क्या भार कम होता है ? उसी तरह हम भगवान् के कंधे पर हैं, तो हमारा भार वह उठायेगा ही ! फिर क्यों अपने सिर पर दूसरे-दूसरे भार लेते हो ? अपने सिर का भार सिर पर से उठाओ और भगवान् की पीठ पर रख दो। यह है, भक्त-लक्षण। ऐसे भक्त हों, तो दुनिया में ईश्वर की जय है !

(परली, ८-६-'५७)

—विनोबा

www.vinoba.in

ग्रामदानी गाँवों का निर्माण-कार्य : कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न

(अ. वा. सहस्रबुद्धे)

श्री गोविंदरावजी,*

आपके ता. १३-६ के पत्र का उत्तर सविस्तार दे रहा हूँ।

समय आया है कि राज्य-सरकारें भूदान और ग्रामदान के सम्बन्ध में अपनी राय निश्चित रूप से ज़ाहिर करें और ग्रामदान को बढ़ावा देने की दृष्टि से प्रचलित कानूनों में क्या-क्या परिवर्तन आवश्यक हैं, इस दृष्टि से सोचें। गवर्नमेंट की तरफ से हम किस प्रकार की सहायता चाहते हैं, इसके संबंध में हम लोगों के विचार भी स्पष्ट हो जाने चाहिए।

ग्रामदानी गाँवों के लोगों ने यदि सारी-की-सारी जमीन ग्रामदान में दे दी है, तो उस पर कानूनी मुहर किस तरह से लगायी जा सकती है, इसका भी विचार सरकार के साथ बातचीत करके हमें कर लेना चाहिए। बंबई-राज्य में इस संबंध में आज कोई कानून नहीं है, न भूदान या ग्रामदान-ऐक्ट ही है। इस परिस्थिति में 'कोआपरेटिव ऐक्ट' हमारे कुछ उपयोग में आ सकेगा या नहीं, इसके सम्बन्ध में "कोआपरेटिव डिपार्टमेंट" से बातचीत करनी चाहिए। मुझे लगता है कि गाँव की सारी जमीन जिसने दान में दे दी है, वह व्यक्ति गाँववालों द्वारा ही बनायी गयी 'कोआपरेटिव संस्था' के नाम उसे कर दे और उस 'कोआपरेटिव सोसायटी' की तरफ से उस जमीन का बँटवारा हो। बँटवारा यदि व्यक्तिगत रूप से करना हो, तो 'टेनेंसी' के रूप में एक-एक व्यक्ति काम करे। याने गाँव का हर शख्स सोसायटी का "टेनेन्ट" बनेगा और वह सोसायटी कुल जमीन की मालकियत अपने नाम रखेगी। इस तरह की व्यवस्था यदि गवर्नमेंट के कोआपरेटिव ऐक्ट के मातहत ही हो सकती है और आज के कानून इसमें सहायता करते हैं, तो निर्माण-कार्य का रास्ता जल्दी से जल्दी खुलेगा। इस 'कोआपरेटिव सोसायटी' को निर्माण-योजना के अनुसार लंबी मियाद और कम मियाद के कर्ज, क्रॉप-लोन (फसल-कर्ज) आदि मिलने की व्यवस्था सरकार की तरफ से हो सकेगी, अन्यथा महाराष्ट्र जैसे अगुआ प्रान्त में खेती के लिए मदद करना गांधी-स्मारक-निधि की शक्ति के भी बाहर होगा। बल्कि कोई भी संस्था यह नहीं कर सकेगी। सरकारी कोआपरेटिव डिपार्टमेंट के द्वारा हरेक काश्तकार को मदद करने की जो योजना बनी है, उसका लाभ ग्रामदानी गाँवों को किस तरह से हो, इसका भी विचार हमें गहराई से करना चाहिए और गवर्नमेंट को भी उसी दिशा में सोचना चाहिए। यदि कानून इस तरह की "कोआपरेटिव सोसायटीज़" बनाने में सहायक नहीं होता है और दान की जमीन की मालकियत का हस्तांतर करने में बम्बई राज्य के आज के भूमि-कानून अड़चनें उपस्थित करते हैं, तो ऐसी कोई योजना नहीं बनायी जा सकेगी, जिसके कि द्वारा इन लोगों के निर्माण-काम में सहायता पहुँचायी जा सके। मेरी राय में, गांधी-स्मारक-निधि सालाना एक लाख रुपया भी इस कार्य में खर्च करने का सोचे, तो भी यह काम होनेवाला नहीं है। जो कर्ज आदि दिया जायगा, उसे वसूल करने का रास्ता भी हम नहीं निकाल सकेंगे और न कोई स्वतन्त्र संस्था ही उसके लिए बना सकेंगे। भूदान-यज्ञ-समिति या भूदान-आन्दोलन की तरफ से इतना ही किया जा सकता है कि जितने कार्यकर्ता इन गाँवों में रहेंगे, वे गाँववालों को ठीक-ठीक मार्गदर्शन करायेंगे और गवर्नमेंट से जरूरी सहायता कैसे प्राप्त की जा सकती है, इसका दिशा-दर्शन भी करेंगे। अन्य सारे काम तो गवर्नमेंट को ही करने होंगे।

खेती की आमदनी बढ़ाने का भी जिक्र आपने किया है। बम्बई राज्य के हर एक जिले में एक डिस्ट्रिक्ट आफिसर खेती के लिए रहता है। उसके मातहत पाँच-पचीस फील्ड-वर्कर्स भी होते हैं। कोआपरेटिव सोसायटी बनाने के बाद उनके ही मार्ग-दर्शन में काश्तकार को कर्जा दिया जाता है। खेती आदि की आमदनी बढ़ाने की दृष्टि से बीज, खाद आदि का प्रबन्ध भी इन फील्ड-वर्कर्स द्वारा होता है। ऐसी परिस्थिति में हम पाँच-पचीस गाँवों के लिए ही कोई एक अलग-योजना बना सकेंगे या बनायेंगे, ऐसा विचार हमें नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से, खेती के सारे कानूनों का अध्ययन किये हुए विशेषज्ञों से हमें सलाह-मशविरा भी कर लेना चाहिए।

यदि पाँच-पचास ग्रामदानी गाँव एक ही क्षेत्र में हैं और कोई अ-दानी गाँव उस क्षेत्र के बीच में नहीं है, तो उन ग्रामदानी गाँवों की एक "सर्किल सोसायटी" भी बनायी जा सकती है। 'सर्किल सोसायटी' के लिए मार्केटिंग आदि की दृष्टि से भी संगठन खड़ा किया जा सकेगा। तब, आज जो काम हम करना चाहते हैं, वह पूरा का पूरा इस सर्किल सोसायटी के द्वारा हो सकेगा। यदि हमारे पास शक्ति व साधन हों, तो इन गाँवों का आर्थिक-सामाजिक सर्वे करने का काम भी हाथ में लिया जाय, वहाँ कितनी बेकारी है, इसका भी अभ्यास किया जाय और इस बेकारी का पूर्ण निराकरण करने के ख्याल से कौन-कौनसे ग्राम-उद्योग वहाँ खड़े किये जा सकते हैं, इसका भी चित्र हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिए। यह काम अखिल भारतीय खादी-ग्रामोद्योग-बोर्ड के "इकॉनॉमिक रिसर्च सेक्शन" के द्वारा भी हो सकेगा और उनकी सहायता भी मिल सकेगी। ऐसा कुछ चित्र खड़ा हो जाने के बाद वहाँ खादी-बोर्ड की सघन-क्षेत्र-योजना भी चलायी जा सकेगी। सवाल इतना ही है कि इस योजना को चलाने के लिए वहाँ कार्यकर्ता मिलेंगे या नहीं, गाँव की कमेटी बनेगी या नहीं और उसके द्वारा सारा संगठन खड़ा किया जा सकेगा या नहीं ?

कई जगह ऐसा पाया गया है कि ग्रामदानी गाँवों की बागडोर अक्सर उन्हीं लोगों के हाथ में चली जाती है, जिन लोगों के हाथ में गाँव का पूरा आर्थिक-जीवन रहता है। फिर आप वहाँ कुछ भी निर्माण-कार्य शुरू करें, इन लोगों का सहकार यद्यपि पहले-पहल मिल भी जाता है, तो भी बाद में उनके द्वारा विरोध होने लगता है, क्योंकि वहाँ जो सारे "वेस्टेड् इन्टरेस्ट" (सम्बन्धित स्वार्थ) वाले होते हैं, उनका उस हद तक हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ होता है और उनको इसकी स्पष्ट कल्पना भी पहले से नहीं हुई होती है। अतः ग्रामदानी गाँवों के सारे निर्माण-कार्यों का नियंत्रण, गाँव में जो अस्सी प्रतिशत मिडिल क्लास (मध्यम श्रेणी) के काश्तकार रहेंगे, उनके हाथ में किस तरह पहुँचेगा, इसका प्रयत्न होना चाहिए। भूमिहीनों को अपनी बराबरी के अधिकार देने हैं और उनको हर तरह की मदद करके अपने स्तर पर लाना है, इसी प्रोग्राम को ग्रामदान के निर्माण-कार्य की बुनियाद माननी चाहिए। यह सब लीडरशिप के हृदय-परिवर्तन से खड़ा करने की कोशिश हमें करते रहना पड़ेगा। यदि धीरे-धीरे यह संगठन बढ़ता है, तो इने-गिने ४-६ फीसदी लोग, जो वेस्टेड इन्टरेस्ट के रूप में पहले से काम करते आये हैं, उसमें शामिल हो जायेंगे, ऐसा हमें मानना चाहिए। लेकिन इस चीज की तरफ हमारा ध्यान यदि नहीं रहेगा, तो आज या कल, निर्माण-कार्य को खतरा पहुँचने वाला है, ऐसा हमें समझना चाहिए। ग्रामदानी गाँवों में गहराई से अध्ययन करने वाले नये दस-पाँच युवकों को भी बैठ जाना चाहिए और उनका खर्च सम्पत्ति-दान से या अन्य किसी केन्द्रीय निधि से चलाने की भी हमारी योजना होनी चाहिए।

आज जहाँ १०० ग्रामदानी गाँव हुए हैं, वहाँ हजार भी हो सकते हैं। सबके ऐसे सवालों को सुलझाने की दृष्टि से करोड़ों रुपयों की आर्थिक सहायता लग सकती है। इस दृष्टि से हमें विचार करना चाहिए और ऐसे तरीके हमें अपनाने चाहिए, जिससे कि चाहे जितने ग्रामदान हो जाते हैं, तो भी उनका हम स्वागत ही कर सकें। उन सबको संगठित करने और मदद करने के लिए हमारी या सरकार की योजना हमेशा आगे बढ़ेगी, इस विश्वास से हमें आगे कदम रखना चाहिए।

रिजर्व बैंक आफ इंडिया की तरफ से जो "क्रेडिट योजना" बनी है, उस योजना के अन्तर्गत भी ऐसे ग्रामदानी गाँवों में "कोआपरेटिव" बनाने के बाद पूरी सहायता मिल सकती है, इसका समर्थन उनका 'क्रेडिट सर्वे रिपोर्ट' करता है। इन सब प्रश्नों का गंभीरता से अध्ययन करके उस पर सोचा जाने पर ही कुछ वास्तववादी योजना बन सकेगी, अन्यथा अपने को हवा में ही बातचीत करते हुए हम पायेंगे।

आपका, अ. वा. सहस्रबुद्धे

---

*महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भूदान-कार्यकर्ता श्री गोविन्दराव देशपांडे के नाम अखिल भारत-सर्व-सेवा-संघ के प्रधान मन्त्री श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्धे द्वारा लिखे हुए पत्र का महत्त्वपूर्ण अंश। —सं०

... गीबन ने "फॉल आफ दि रोमन एंपायर" में लिखा है कि रोम के लोग शरीर-परिश्रम को हीन समझते थे, इसलिए रोम का अधःपतन हुआ ! सारे इतिहास में यही दिखायी देता है। पर जो शरीर-परिश्रम करते हैं और जिनकी सेवा के बिना समाज चल नहीं सकता, वे आज हीन माने जाते हैं, जैसे भंगी, चमार, बहनें, किसान आदि। ऊँची श्रेणी वाले माने जाते हैं वे, जिनके हाथ को मिट्टी भी नहीं लगती ! कभी-कभी स्याही लगती है, तो वे विद्वान् मान लिये गये। मनुस्मृति में लिखा है—"सदा शुचिः कारु हस्तः"—काम करने वाले मजदूर के हाथ सदा पवित्र होते हैं, उसको हाथ धोने की जरूरत नहीं। ईसा मसीह बढ़ई थे। उनके नाम से करोड़ों लोग भजन करते हैं, परंतु बढ़ई-काम करना हीन समझते हैं ! यह बड़ा भारी रोग समाज को लगा है। इसलिए श्रम-उपासना हमको शुरू करनी चाहिए एवं हर रोज शरीर-परिश्रम के बिना खाना तक नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार का आध्यात्मिक नियम ही हो जाना चाहिए।

(कुंभकुलं, त्रिचुर, १९-६-'५७) —विनोबा

www.vinoba.in

प्रश्नोत्तरी

तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति के बाद !

(धीरेन्द्र मजूमदार)

प्रश्न :—पलनी-प्रस्ताव से आन्दोलन तंत्र-मुक्त और संचित-निधि-मुक्त हो गया। क्रांति के विचार तथा साध्य की दृष्टि से निर्णय ठीक लगता है। लेकिन व्यवहार में वह कहाँ तक ठीक है, यह समझ में नहीं आता है। निर्णय हुए सात महीने हो गये। ऐसा लगता है कि इस निर्णय से आन्दोलन एक तरह से बन्द ही हो गया! गांधी-निधि से प्राप्त वेतन-भोगी कार्यकर्ता भी नहीं दिखायी देते हैं। कार्यकर्ता चले गये, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। आखिर वे काम करेंगे, तो उनका गुजारा होना ही चाहिए। फिर तंत्र न रहने से कार्यकर्ता को मार्ग-दर्शन कहाँ से मिलेगा, इन प्रश्नों का समाधान नहीं हो रहा है। इसलिए क्या अब समय नहीं आ गया है कि आप पलनी-प्रस्ताव पर पुनर्विचार करें ?

उत्तर :—विचार या साध्य और व्यवहार कोई दो चीज नहीं है। मनुष्य व्यवहार किसलिए करता है ? विचार के आधार पर साध्य की प्राप्ति में ही न ? अगर आप मानते हैं कि विचार सही है, तो व्यवहार उसी दिशा में करना होगा। यह बात समझ में आनी चाहिए। किसी व्यक्ति को अगर हरिहरपुर जाना है और अगर वह पूरब की दिशा में है, तो आप उसे पूरब जाने को ही कहेंगे। लेकिन पूरब की ओर कोई सड़क नहीं है। झाड़ और जंगल है। साथ ही पश्चिम दिशा में बनी-बनायी सड़क है। तो अगर वह व्यक्ति कहे कि पूरब होकर जाना व्यावहारिक है, तब आप उसे क्या जवाब देंगे ? सड़क बनी है, इसलिए पश्चिम की ओर जायें ?

अगर आपको विचार और लक्ष्य की दृष्टि से विनोबा की सलाह सही मालूम होती है, तो व्यवहार में उस सलाह के अनुसार कैसे चला जाय, उसका मार्ग ढूँढ़ना होगा, न कि दूसरी दिशा के बने-बनाये मार्ग से चल देंगे। आप सारे समाज को शासन-मुक्त करना चाहते हैं। यानी आप चाहते हैं कि समाज स्वयं-आधारित यानी स्वावलम्बी हो। आप चाहते हैं कि जनता ऊपर से किसी व्यक्ति या संस्था-द्वारा संचालित न हो। तो ऐसे समाज की रचना का पौरोहित्य कौन करेगा ? क्या वे पुरोहित तंत्रवाद तथा केन्द्रीय-निधि-आधारित होंगे ? ऐसा होगा तो आपकी क्रांति सफल न होगी। यही कारण है कि स्वतंत्र सत्याग्रही लोक-सेवकों का निर्माण होना चाहिए, जो किसी प्रकार की केन्द्रीय सत्ता के आधार पर न रह कर पूर्ण रूप से जन-आधारित हों। गुजारा तो उनका अवश्य होना चाहिए। लेकिन प्रश्न यह है कि गुजारा कहाँ से हो ? विनोबाजी यह नहीं कहते हैं कि वे या उनका बच्चा भूखा रहे। उनका कहना इतना ही है कि उनके गुजारे का आधार जनता की चालू-सम्पत्ति पर हो, न कि संचित-निधि पर। और जनता विचार को समझ कर यह महसूस करे कि ये लोक-सेवक हमारे मार्ग-प्रदर्शक हैं और हमको उन्हें सम्हालना है। आप पूछते हैं कि तंत्र के बिना सेवकों का मार्ग-दर्शन कौन करेगा ? तंत्र-मुक्त का मतलब यह नहीं है कि समाज व्यवस्था-मुक्त हो जाय या संघ-मुक्त हो जाय। समाज का मतलब ही संघ होता है। लोक-सेवकों का भी संघ होगा। वे आपस में मिलेंगे। विचारों का आदान-प्रदान करेंगे। कोई अधिक अनुभवी विचारक होगा, तो कम अनुभवी सेवकों का मार्ग-दर्शन भी करेगा। लेकिन वह संघ चेतन पुरुषों का होगा। जड़ संस्था द्वारा आबद्ध न होगा। पलनी-प्रस्ताव द्वारा हमने समितियों का विघटन किया है। सम्मेलन का निषेध नहीं किया है। तो आप लोग जो सेवक हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र में लोगों के सम्मेलन का आयोजन करेंगे, विचार-विनियम करेंगे। फिर अपने-अपने स्थान पर जाकर क्रांति के आरोहण में लगे रहेंगे। **जिस हद तक आप अपने साथ अपने आसपास के समाज को आगे ले जा सकेंगे, उस हद तक क्रांति आगे बढ़ेगी।** इस प्रकार क्षेत्रीय-सम्मेलन से बढ़कर प्रादेशिक तथा आखिर में अखिल भारतीय सम्मेलन का भी आयोजन किया जाना चाहिए। फिर वह संघ एक बहुत बड़ी विचारक बिरादरी का रूप ले लेगा और जैसे-जैसे उस बिरादरी के विचारकों का वैचारिक स्तर ऊपर उठेगा, वैसे-वैसे वह सारे समाज को अपनी ओर खींचेगा।

संक्षेप में, समिति का विघटन कर सम्मेलन-प्रक्रिया का व्यापक आयोजन करना होगा तथा केन्द्रीय संचित-निधि से मुक्त होकर सम्पत्ति-दान, श्रम-दान, अन्न-दान आदि चालू दान-प्रक्रिया से आन्दोलन का खर्च चलाना होगा।

अंत में मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप जैसा समझते हैं कि निधि द्वारा गुजारा प्राप्त कार्यकर्ताओं के चले जाने से आन्दोलन ठप पड़ गया है, सो बात ऐसी नहीं है! बल्कि आप देखेंगे कि निधि-मुक्ति के बाद जनता का आकर्षण हमारे आन्दोलन की ओर अधिक बढ़ा है। पहले लोग समझते थे कि कुछ वैतनिक कार्यकर्ता हैं और जैसे अन्य लोक-कल्याणकारी-विभाग हैं, वैसे ही यह भी है, तो उनको उत्साह नहीं होता था। लेकिन आज उनमें अधिक चेतना आयी है और उसी चेतना के आन्दोलन से ही जनता के भीतर से नये असंख्य कार्यकर्ता निकलेंगे, जो बाहरी भरोसे न रहेंगे, बल्कि अपने क्षेत्र से अपना पोषण जुटाते रहेंगे। **मेरे पास इन सात महीनों में जितने भाई आये हैं, उतने पहले कभी नहीं आये थे!**

कर्नाटक-प्रदेश का परीक्षा-काल !

—बाबू कामत

"हम कर्नाटक में आ रहे हैं। कितने ग्रामदान दीजियेगा ? हजार से कम ग्रामों के द्वारा तो हमारा स्वागत न हो !"

सर्वोदय-संमेलन कालडी में तय हुआ कि विनोबाजी शीघ्र ही कर्नाटक आ रहे हैं। हम लोग उनसे मिले। उस समय उन्होंने उपर्युक्त माँग पेश कर दी! "उनके आने के बाद सौ गाँव मिल सकेंगे", यह बात जब हमने उनके सामने रखी, तो कहने लगे, "ऐसा उधार व्यापार नहीं चलेगा, नक़द काम चाहिए! हमारे पहुँचने से पहले ही ग्रामदान मिलने चाहिए। मैसूर से यह अपेक्षा इसलिए है कि १५ जून के करीब देश के नेता राष्ट्र-संकल्प के लिए वहाँ इकट्ठा हों, ऐसी चर्चा चल रही है।"

हमने उनका आशीर्वाद लिया और कर्नाटक लौट कर सामूहिक पदयात्रा के लिए निकल पड़े, यद्यपि बहुत ही कम अवधि बाकी थी! लेकिन बाद में समाचार मिले कि हमारे केरल के भाइयों ने उन्हें ४ महीनों के लिए केरल में ही रोक लिया है, ताकि वहाँ से भूमि का निजी स्वामित्व दूर करके ही वे बाबा को भेज सकें!

फिर भी पदयात्राएँ चलती ही रहीं। हुणसूर तालुका ग्रामदान के लिए अनुकूल महसूस हुआ। इस बीच विनोबाजी की तबीअत खराब होने के समाचार मिले, तो उनके पास जाना हुआ। तभी वे कहने लगे : **"दिल्ली से वल्लभस्वामी का पत्र है कि २१-२२ सितंबर को नेतागण मैसूर पहुँच सकेंगे। उस दिन मैसूर में ग्रामदान का राष्ट्रसंकल्प हो** और २-३ दिन के बाद वहीं लोक-सेवक-शिविर भी हो, ऐसा कार्यक्रम सोच रहे हैं।"

कर्नाटक के लिए फिर यह नया आवाहन था! ता. ९ की बात है। आगे काम की कैसी योजना बनायी जाय, ताकि ग्रामदान मिलें, इसकी चर्चा के लिए उनके पास हम लोग बैठे थे। प्रार्थना हो चुकी थी। विनोबाजी कहने लगे :

"अब जहाँ-तहाँ घूमने के बनिस्बत एक जिला चुनने का विचार चल रहा है। अर्थात् यह ग्रामदानी क्षेत्र ही होगा। क्रांति का समग्र दर्शन वहाँ प्रत्यक्ष करने की उत्कटता से प्रांत और देश के चुने हुए कार्यकर्ता उस स्थान पर काम में लग जायँ, घर-घर से संपत्ति-दान मिले, जिले से देश भर में और देश भर से जिले में जगह-जगह पदयात्राएँ चलें और इस नवयुग के योग्य सूक्ष्मतम सत्याग्रह चलाने की पूरी सामग्री वहाँ सिद्ध हो, ऐसा विचार होता है। १००-२०० चुने हुए कार्यकर्ता ऐसे क्षेत्रों में सतत खपने के लिए कमर कसें, तो मेरा शेष आयुष्य मैं वहाँ उँडेलने के लिए तैयार हूँ।"

कर्नाटक को यह भाग्य मिले, यह हम सुझा ही रहे थे कि वे कहने लगे : **"कर्नाटक को दृष्टि में रख कर मैं यह बात नहीं कर रहा हूँ। हिंदुस्तान में कहीं भी ऐसा हो सकता हो, तो मैं पूरी ताकत से जुट जाने की मनस्थिति में हूँ।** ये विचार जयप्रकाशजी के सामने भी मैंने रखे, तो उनको वे बहुत अच्छे लगे। वे स्वयं एक क्षेत्र चुनने की कोशिश करने वाले हैं।"

सत्याग्रह के सूक्ष्मतम स्वरूप का दर्शन कैसे होगा, इसका विवेचन शायद वे करने वाले ही थे कि बीच में कुछ व्याघात पहुँचा और बात वहीं की वहीं रह गयी! ग्रामदान और ग्रामराज की क्रांति के द्वारा कर्नाटक विनोबाजी का स्वागत करे, यह हमारी अभिलाषा तो है, पर हम चिंता में थे कि यह बोझ प्रांत में कौन नेता उठायेगा ? हमारी झिझक देख कर वे कहने लगे :

"कर्नाटक में यह काम किसी नेता ने नहीं उठाया है, इसका अर्थ ही यह है कि जनता सीधे इसे उठा लेगी! जनहृदय के प्रवेश में कोई रुकावट ही नहीं होगी। हमें इसके लिए बड़ी प्रसन्नता है।"

कर्नाटक का यह परीक्षा-काल है। ईश्वर हमें बल दे कि हम सब इसके योग्य बन सकें!

---

www.vinoba.in

गांधीजी की राजनीति के मूलाधार

(स्व० भारतन् कुमारप्पा)

गांधीजी के लिए अहिंसा निष्क्रिय या निषेधात्मक चीज नहीं थी। इसके विपरीत, उनकी धारणा में वह एक प्रगाढ़ चालक और सक्रिय शक्ति थी। उसे प्रेम कहा जा सकता है, बशर्ते कि उस प्रेम में स्वार्थ का अंश न हो। उन्होंने हमें बताया है—"अहिंसा को जितना हम साधते हैं, उतना ही हम भगवान् के सदृश बन जाते हैं।" "भगवान् को हम सांसारिक स्नेह के द्वारा नहीं, दैवी प्रेम के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं।" "असहाय की सेवा ही धर्म है।"

इसीलिए, आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने चरखे में, जो कि भूखों को रोटी और नंगों को वस्त्र देता है, प्रेम के दर्शन किये। उन्होंने हमें बताया है—"जब तक कि एक भी पुरुष या स्त्री बेकार और भूखी है, तब तक आराम करने या भरपेट खाने में हमें शर्म आनी चाहिए।" इसी कारण उन्होंने गरीबी अपनायी, सादा खाना खाया, मोटा हाथकता खद्दर पहिना और मिट्टी की झोंपड़ी में रहते हुए हमारे गाँवों के निराश और असहाय गरीबों को काम देने के लिए अथक कोशिश की।

सामाजिक क्षेत्र में उनका प्रेम असमानता या उच्चता अथवा विलगता के विचारों को सहन नहीं करता था। इसके परिणामस्वरूप ही उन्होंने अस्पृश्यता का कलंक दूर करने के लिए अपनी जान खतरे में डाली, 'अछूतों' को अपने आश्रम में भर्ती किया और 'अस्पृश्यों' की बस्ती में उनके साथ रहे। उनके अहिंसा-धर्म ने उन्हें समाज के निम्नतम लोगों के साथ मिलने-जुलने और उनके बनने के लिए प्रेरित किया।

राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का मतलब है, राजनीतिक दासता के विरुद्ध लड़ना। विदेशी शासन चाहे जितना हितकर होने का प्रयत्न करे, वह गांधीजी को जीवित-मृत के समान लगता था, क्योंकि वह उस देश की प्रजा से अपनी व्यवस्था खुद करने की जिम्मेदारी और क्षमता छीन लेता है। इसलिए, विदेशी हुकूमत से अपने देशवासियों को मुक्त करने के लिए, उन्होंने किसी भी कष्ट को बहुत अधिक नहीं माना।

किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा की प्राप्ति गोरे शासकों की जगह गेहुँएँ शासकों को रख देने से ही नहीं हो जाती। अहिंसा का जो मतलब उन्होंने समझा, उसके अनुसार अन्तिम व्यक्ति को भी अपना शासन खुद करने की आजादी मिलनी चाहिए, बशर्ते कि वह उसके द्वारा अपने पड़ोसी को हानि नहीं पहुँचाता हो। उनका आदर्श था, सबके लिए स्वराज, याने हिन्दुत्व की शिक्षा के अनुसार आत्म-सिद्धि। इस तरह की आत्मसिद्धि हिन्दू-शिक्षा के अनुसार सिर्फ सत्य, अहिंसा और अन्य गुणों—खासकर आत्मत्याग और आत्मनियंत्रण—के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए यह पहले ही से मान लिया गया है कि दिन-प्रतिदिन के प्रबल संयम और आत्मानुशासन के द्वारा शरीर और संकीर्ण व्यक्तिवाद को संयत रखना चाहिए। केवल वही व्यक्ति आत्मसिद्धि प्राप्त करने का दावा कर सकता है, जिसने अपने आप पर पूरा काबू पा लिया हो, जो गीता के अनुसार स्थित-प्रज्ञ हो और जो अपनी वासनाओं का शिकार न बने। इसी कारण गांधीजी ने लिखा है—

> "आत्मशासन ही सबसे सच्चा स्वराज्य है; यह मोक्ष का समानार्थक है।" "मैंने इसलिए अपने शब्दों और कार्यों के द्वारा यह बताने की कोशिश की है कि राजनीतिक स्वशासन व्यक्तिगत स्वशासन से बढ़कर कोई चीज नहीं है; इसलिए इसे ठीक उन्हीं साधनों द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए, जिनकी जरूरत व्यक्तिगत स्वशासन या आत्मशासन के लिए होती है।"

अगर इस प्रकार के स्वशासन को ही अन्तिम ध्येय बनाना है, तो यह मुख्य रूप से स्वयं व्यक्ति की ही जिम्मेदारी है और राज्य द्वारा इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु राज्य की भी अपनी जिम्मेदारी होती है। उसे यह देखना पड़ता है कि व्यक्ति के आत्मविकास में बाधाएँ न पड़ें। इसे अधिक स्पष्ट रूप में इस तरह कहा जा सकता है कि वह ऐसी अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्ति को अपने आप पर नियंत्रण में सहायता प्राप्त होती है। राज्य व्यक्ति को नीतिमान नहीं बना सकता; पर उसे ऐसी स्थितियों की स्थापना करनी चाहिए, जिनसे नैतिकता का निर्माण संभव होता है। गांधीजी के कथनानुसार राज्य का यही सर्वोपरि कार्य है।

इसलिए, अगर राज्य का कार्य अधिकाधिक रूप में व्यक्तिगत आत्मशासन को बढ़ाना है, तो उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जो व्यक्ति को कमजोर बनाये अथवा उसके मामलों की व्यवस्था अपने हाथ में ले ले। इसीलिए गांधीजी ने कहा था :

> "मैं राज्य के अधिक शक्ति प्राप्त करने को अतिशय डर का कारण समझता हूँ।" "स्वशासन का मतलब है, सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र होने की लगातार कोशिश। अगर लोग जीवन की हर बात का संचालन करने के लिए सरकार का मुँह देखें, तो स्वराज्य-सरकार तो एक अफसोस की चीज बन जायगी।" आदर्श तो प्रबुद्ध अराजक राज्य स्थापित करना है। "ऐसे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा। वह आत्मशासन इस ढंग से करेगा कि वह कभी भी अपने पड़ोसी के मार्ग में बाधक नहीं होगा। इसलिए आदर्श राज्य में कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ राज्य जैसी कोई चीज ही नहीं होगी। परन्तु जीवन में आदर्श कभी पूर्ण रूप में कार्यान्वित नहीं होता, इसीलिए थोरो का यह प्रसिद्ध वक्तव्य सच है कि सर्वश्रेष्ठ सरकार वही है, जो कम से कम हुकूमत करे।"

इसीलिए गांधीजी के मतानुसार सबसे अच्छी सरकार वही है, जो विकेन्द्रित है और जहाँ छोटे क्षेत्रों—जैसे गाँव या गाँव-समूह—के लोग अपने मामलों की व्यवस्था खुद करें। इसके लिए वे अपने में से ऐसे लोगों को चुन लेंगे, जिनकी न्याय-निष्ठा और सार्वजनिक भावना में उन्हें विश्वास है और अपने दल के बारे में उनके निर्णय के अनुसार वे चलेंगे। यह ग्राम-समूह एक बड़े संयुक्त परिवार या सहकारी संस्था की तरह काम करेगा, जहाँ दल के सभी सदस्यों के विकास में ही व्यक्ति भी अपना विकास प्राप्त करेगा। व्यक्ति का प्रमुख कर्तव्य होगा—अपने निकटतम पड़ोसी की सहायता करना और उसे सहारा देना। गांधीजी ने इसीको स्वदेशी का सिद्धान्त कहा था।

परन्तु गांधीजी के लिए इसका मतलब यह नहीं था कि प्रत्येक दल अपने छोटे-से क्षेत्र के अन्दर, दूसरों से टूटा हुआ रहे और उस छोटे वृत्त के बाहर अपना कोई फर्ज न समझे। उनके कथनानुसार तो दल एक प्रकार का संघ होगा, जो स्वेच्छापूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता पर आधारित होगा, जहाँ कोई भी दल या व्यक्ति दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करेगा।

असंख्यों गाँवों से निर्मित इस ढाँचे में जीवन कोई ऐसा चूड़ान्त (पिरामिड) नहीं बनेगा, जिसके ऊपरी भाग का भार नीचे के हिस्से को बर्दाश्त करना पड़े। बल्कि वह तो एक ऐसा महासागरीय मण्डल होगा, जिसका मध्यबिन्दु गाँव के लिए बलिदान होने के लिए तैयार व्यक्ति होगा; गाँव, गाँव-समूह के लिए निछावर होने के लिए तैयार होगा और आखिर में यह सारा राष्ट्र-जीवन व्यक्तियों के एक समुदाय का होगा।...बाहरी परिधि को यह अधिकार नहीं होगा कि वह भीतरी वृत्त को कुचल सके। इसके विपरीत वह समूचे आन्तरभाग को शक्ति देगा और उससे अपनी शक्ति प्राप्त करेगा।

यह वह आदर्श राजनीतिक ढाँचा है, जिसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। अगर हम अधिक से अधिक स्वशासन और व्यक्ति का अधिक से अधिक आत्म-विकास करना चाहते हैं, अगर इस तरह से आदर्श के लिए कोशिश करते समय हमें किसी ऐसी राजनीतिक प्रणाली का विरोधी बनना पड़े, जो व्यक्ति को आजादी और उपक्रम न देना चाहे, तो हमें उसका प्रतिरोध करना पड़ेगा। यह कैसे होगा? इसका उत्तर गांधीजी ने अपने ही व्यक्तिगत उदाहरण से दिया था। राजनीतिक बुराई को हिंसात्मक साधनों द्वारा नहीं, बल्कि जहाँ तक हो सके, वैधानिक उपायों द्वारा और जब वह नाकामयाब रहे, तो सत्याग्रह या अहिंसात्मक प्रतिरोध के द्वारा दूर करना चाहिए। इस (सत्याग्रह) में अपार कष्ट सहन करते हुए भी सत्य से चिपट कर रहना पड़ता है और इस प्रकार शासक या शासकों की विचारबुद्धि या विवेक को अपील की जाती है। इसके लिए केवल सत्य और अहिंसा का ही साधन अपनाना होता है, क्योंकि इसका हेतु सत्य और अहिंसा के सिवा, जो कि धर्म का ध्येय है, और कुछ नहीं है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी का सम्पूर्ण राजनीतिक तत्त्वज्ञान, उनका राजनीतिक ध्येय और उसके साधन, सब एक ही चीज है। उसका उद्गम, उनका धर्म, सत्य और अहिंसा ही है।

('गांधी मार्ग' के लेख से, सादर) ——

www.vinoba.in

भारत का स्वभाव बदलने के महाकार्य में—

केवल विचार-प्रचार ही पर्याप्त नहीं है !

(विनोबा)

हिंदुस्तान में पाँच लाख गाँव हैं। हर गाँव में हम ही जाना चाहेंगे, तो हजारों साल लग जायेंगे और जमीन तो गाँव-गाँव में है, भूदान-ग्रामदान हर गाँव में हो सकता है, अतः हर गाँव में पहुँचना होगा, अपना विचार लोगों को समझाना होगा। पर यह काम केवल हम तो नहीं कर सकते ! हमसे यही अपेक्षा रह सकती है कि हमारी यात्रा से देश में वातावरण बन जाय। तो उस-उस प्रांत के लोगों को खड़े होना चाहिए और विचार-प्रचार का काम करना चाहिए।

लेकिन लोगों के पास विचार पहुँचाने से ही काम नहीं होगा, क्योंकि हिंदुस्तान के लोगों के स्वभाव में अप्रवृत्ति है। विचार समझाया, तो वह समझ लेंगे, पसंद करेंगे। परंतु उस पर अमल नहीं करेंगे, क्योंकि कल तक अमल नहीं किया था इसलिए ! विचार कल समझे हैं, इसलिए आज पसंद करते हैं। परंतु कल अमल नहीं किया था, इस वास्ते आज भी अमल में नहीं लायेंगे ! देश में स्वतंत्र-प्रवृत्ति का अभाव है। अपने देश में सद्भावना कम नहीं है, परंतु खुद काम नहीं करेंगे, यह बड़ी भारी कमी है। इसलिए विचार समझाने से ही नहीं होगा, लोगों को प्रेरणा देकर उनसे काम भी करवाना होगा। मैं यहाँ बैठा हूँ। मुझे ठंढ लग रही है। सामने जरा दूर कपड़ा पड़ा है। परंतु उठ कर मैं वह नहीं लेता हूँ ! अगर कोई सेवा करे, वह कपड़ा ला दे, तो उसका उपकार मानूँगा ! यह है वृद्ध का लक्षण। वस्तु सामने दीखने पर भी कर नहीं सकते। हाँ, दूसरा करेगा, तो प्रशंसा करेंगे। इस तरह भारत का समाज वृद्ध बना है। वृद्ध विचार तो ग्रहण करते हैं, समझते भी हैं, परंतु उसके अनुसार काम नहीं कर सकते।

समाज का यह दोष दूर करने के लिए हमको हनुमान की उपासना समाज के सामने रखनी चाहिए। "मनोजवं मारुत तुल्य वेगम्"—जिसके शरीर में वेग और बुद्धिमत्ता है ! समाज के सामने हनुमान की उपासना स्वामी विवेकानन्द ने रखने की कोशिश की, महाराष्ट्र के संत रामदास स्वामी ने गाँव-गाँव हनुमान की प्रतिष्ठा की, और भी बहुतों ने की है ! उपासना रामचंद्र की नहीं, हनुमान की चाहिए ! **रामचंद्र की उपासना करेंगे, तो भक्त बनेंगे, बैठे-बैठे ही उसका फल चाहेंगे। हनुमान की उपासना करेंगे तो उठेंगे, काम में लग जायेंगे। हमारा समाधान केवल विचार समझाने में नहीं है, क्योंकि हम हिंदुस्तान का स्वभाव बदलना चाहते हैं।** वे विचार समझते हैं, पर कहते हैं, कल करेंगे ! लेकिन वह कल आज ही बनता है, इस वास्ते कल कभी आता ही नहीं। हिंदुस्तान के लोग महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक हरेक के विचार हजम कर चुके हैं। समुद्र में गंगा जाकर मिली, यमुना, कावेरी, नर्मदा भी मिली। लेकिन समुद्र खारा का खारा ही है। उसमें कोई मिठास नहीं आयी। जहाँ बुद्ध भगवान् से गांधी तक सबको हजम किया, वहाँ बाबा का क्या चलेगा ? इसलिए लोगों को विचार समझाना होगा और हाथ पकड़ कर उनसे प्रेम से काम भी करवाना होगा। विचार समझने पर ना नहीं कहेंगे, क्योंकि उनका स्वभाव वैसा नहीं है। परंतु स्वयं-प्रेरणा से काम नहीं करेंगे !

हमारा स्वास्थ्य कुछ खराब था। कार्यकर्ता कहने लगे, पालघाट में दो दिन ठहरिये। हमने कहा, दस मील नहीं चल सकेंगे, तो पाँच ही मील चलेंगे, नहीं तो तामसिक स्वभाव आयेगा ! याने अप्रवृत्ति होगी। इस वास्ते पाँच मील आकर यहीं बैठ गये, जब कि हमारा पड़ाव आज यहाँ होने वाला नहीं था ! वैसे, आने पर हम तो दिन भर घर में ही बैठते हैं। इतने से क्या होता है ? परंतु कार्यकर्ता के पीछे तकाजा लगता है, तो प्रेम से यह कार्य होता है। तो भारत का उसमें भला है ही, परंतु दुनिया में भी शांति-स्थापना संभव होगी। इस वास्ते भारत को दुनिया को राह दिखानी होगी। उस हालत में यह अप्रवृत्ति कब तक पकड़ कर रखोगे ?

इसलिए हमने कहा, रामचन्द्रजी की उपासना मत करो, क्योंकि बैठे-बैठे फल की इच्छा रखोगे। हनुमान की उपासना करोगे, तो वह बंदरों के समान तुमको घुमायेगा। वह कहेगा, हमारा नाम लेते हो न ? तो चलो हमारे साथ ! हो जाओ हमारी सेना में शामिल। परंतु हिंदुस्तान में हनुमान की उपासना कम है, रामचन्द्र की ज्यादा है, क्योंकि वे मानते हैं कि आलसी मनुष्य भी नाम-स्मरण से मुक्ति पा सकता है, नाम से पत्थर भी तर गये, तो हमारे जैसे आलसी भी मुक्त हो जायेंगे, आदि।

नाम-स्मरण हिंदुस्तान में बहुत चला। उसकी महिमा गलत नहीं है। परंतु लोगों ने अर्थ लिया कि बिना कुछ किये ऐसे ही नाम लेंगे, तो भी तर जायेंगे ! इस तरह नाम-स्मरण का अर्थ निष्क्रियता का प्रेरक हुआ। इसलिए हिंदुस्तान के धर्म-विचार में संशोधन करना है। धर्म-विचार में ही निवृत्ति आ गयी है। लाचार हुए बिना काम नहीं करते। इसलिए लोग हमसे कहते हैं कि कानून क्यों नहीं बना लेते ? कहने का अर्थ है, कानून बन जायेगा तो वे खुद झख मार कर आचरण करेंगे ! पसंद है, तो ठीक ही है। पसंद नहीं है, तो विरोध करना होगा। याने सक्रियता आयेगी ! पर अप्रवृत्ति खुद छोड़ना नहीं चाहते। इसलिए कानून बनाने पर हिंदुस्तान के लोग वश हो जाते हैं। पर कानून के द्वारा उन्नति नहीं होगी। वह तो तब होगी, जब यह निष्क्रियता नहीं रहेगी। किसी अवतार के बिना वह नहीं होगा। भारत में बहुत अवतार हुए। राम, कृष्ण, बुद्ध, परंतु लोग वैसे के वैसे रहे हैं। वही निष्क्रियता का स्वभाव पकड़ रखा है। और भी बूढे बनते जा रहे हैं। वृद्ध होने की यह जो प्रक्रिया है, उसे हमको रोकना ही चाहिए।

बड़े-बड़े काँग्रेस के नेता काँग्रेस पर टीका करते हैं। कहते हैं कि काँग्रेस में दोष पैठ गया है। क्या दोष है ? तो लोग अपने स्थान को छोड़ना नहीं चाहते। धक्का मिलेगा, तो छोड़ेंगे, उसके बिना नहीं ! यह दोष काँग्रेस का ही नहीं, भारत का ही यह स्वभाव है। सोचते हैं, इस स्थान में आराम है, यह छोड़ कर दूसरे स्थान में जायेंगे, तो क्रियाशीलता आयेगी। इस वास्ते यहीं चिपके रहना अच्छा है। वकील बूढ़ा बनता है, तब तक उसका बेटा और फिर प्रपौत्र भी उसी कोर्ट में आता है। फिर भी वह वकीली नहीं छोड़ता ! कहते हैं, आदत हो गयी है, दिल लगता है ! याने अप्रवृत्ति है। वहाँ से उनका छुटकारा या तो यमराज करेगा या तो कानून ! बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, मिनिस्टर, किसी संस्था के अध्यक्ष, सेक्रेटरी या वकील २०-२५ साल से वहीं रहते हैं, वही काम करते हैं। ऐसा नियम क्यों न किया जाय कि ५५ साल के बाद उस स्थान से उनको हटाना चाहिए ? जज के लिए यह नियम है या नहीं ? क्या बाद में वह न्याय नहीं दे सकता ? बल्कि ज्यादा उम्र होती है, तो उसकी बुद्धि विकसित होती है, वह न्याय अच्छा दे सकता है। पर यद्यपि वह न्याय देने में प्रवीण है, तो भी वह जज नहीं रह सकता। कहते हैं, दूसरे ढंग से वह सेवा-कार्य कर सकता है। तो जो राजनीतिज्ञ बने हैं, उनके लिए क्यों नहीं ऐसा नियम बनाया जाय ? क्या इसलिए कि वे अपने को राजा समझते हैं और नियम तो प्रजा के लिए होते हैं !! राजा मरेगा, तभी वह हटेगा ! राजसंस्था का ही अनुकरण राजनीतिज्ञों ने भी कर लिया ! मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री रविशंकर शुक्ल ८० साल के होकर मरे। मरते समय भी वे मुख्य मंत्री थे ! क्या जबरदस्ती थी उन पर—इतने समय तक मुख्य मंत्री रहने की ? पर उस स्थान के लिए नियम नहीं था। उनके बारे में व्यक्तिगत मुझे कहना नहीं है, कहना यही है कि स्थिति ऐसी है कि कोई पद छोड़ना नहीं चाहता ! यह हिंदुस्तान का स्वभाव है। स्थान छोड़ेंगे, तो बाकी बचे हुए जीवन में कुछ काम करना पड़ेगा, प्रवृत्ति होगी। उसी स्थान में रहने से सोचना नहीं पड़ता, आदत हो जाती है, निवृत्ति रहती है। लेकिन कहते हैं वे उल्टा ही कि "हम निवृत्त होना नहीं चाहते, प्रवृत्त रहना चाहते हैं !" पर यह कहना ही गलत है। वास्तव में वे निवृत्त ही रहना चाहते हैं। अप्रवृत्ति हो जाती है, इसी वास्ते वहाँ रहते हैं। शिक्षक-प्रोफेसरों का भी यही हाल है। वही-वही सिखाते हैं, सालों तक और बुद्धि का उपयोग ही नहीं।

भारत के स्वभाव में यह जो निष्क्रियता है, उसको हटा कर हमको काम करना होगा, तभी भारत उन्नत होगा। कानून बनाने से बाहर का काम हो सकेगा, परन्तु स्वभाव नहीं बदल सकेगा और स्वभाव बदले बिना भारत की उन्नति नहीं होगी।

यह स्वभाव कैसा बना ? सैकड़ों साल से यहाँ परदेशियों का राज चला और प्रजा निष्क्रिय बनी। सारा इंतजाम राज्यकर्ता करते हैं, हमको करने का कुछ रहा ही नहीं, यह धारणा बन गयी। पर अब स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी यही चाहते हैं ! नाम है आजादी का, परंतु बने बिलकुल गुलाम हैं : 'सरकार जो कहेगी, वह करेंगे। हम क्या कर सकते हैं ? हम जैसे हैं, वैसे रहेंगे ! जो कानून सरकार बनायेगी, उसके अनुसार करेंगे !' पर यह स्वभाव देश के लिए हितकारक नहीं है। भूदान-यज्ञ, ग्रामदान में हमारी ऐसी ही कोशिश है कि लोग अपनी-अपनी ओर से सब कुछ करें।

(पेरुवेंप्पा, पालघाट, २-६-'५७)

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

५ जुलाई सन् १९५७

बीना हीम्मत और पुरुषार्थ के 'स्वराज्य' कैसा ?

(वीनोबा)

आज हमारा प्लान पूरा करने के लीअे टैक्स बढ़ाना पड़ता है। यह ठीक है की देश की अुन्नती के लीअे कुछ पैसा अीकट्ठा करना ज़रूरी होता है। परंतु अैसा बजट आजादी का नहीं, गुलामी का होता है, क्योंकी अुसमें डीफेन्स (प्रतीरक्षा) के लीअे करोड़ों रुपयों का खर्च रखा गया है। क्या अीसमें फरक नहीं कर सकते ? पर लोग डरते हैं। अमेरीका-रशीया से नहीं, पाकीस्तान से और पाकीस्तान हींदुस्तान से ! पर कोअी सुझाव दे की लश्कर का बजट आधा करो, तो देश में सभी घबड़ा जायेंगे। अीसको कहते हैं गुलाम देश ! रशीया, अमेरीका जैसे ताक़तवर देश भी आज आजाद नहीं है। हमारे हृदय में डर है, भय है, अीस वास्ते करोड़ों रुपये रक्षण के ख्याल से फीजूल जा रहे हैं और यह पैसा वसूल करने के लीअे टैक्स लगाना पड़ता है। टैक्स पर हम टीका करना नहीं चाहते। बड़े-बड़े लोगों ने पहले ही वह की है। पर हम कहते हैं की लश्कर का खर्च आधा क्यों नहीं होता ? महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वराज्य की मांग हम करते थे। स्वराज्य क्यों चाहीअे, अीसके वर्णनमें अेक बात यह भी कहते थे की लश्कर का खर्च तब हम आधा कर सकेंगे ! 'अंग्रेजों के लश्कर के बजट के नीचे भारत दब रहा है,' अैसी भाषा कांग्रेस बोलती थी। पर स्वराज्य में भी वही हाल है, अतः हम मन से आज़ाद नहीं हुअे हैं।

डर का अेक दूसरा कारण भी है। आपस-आपस में जैसा सुनेह हींदुस्तान में होना चाहीअे, वैसा नहीं है। अगर हींदुस्तान अेकरस होता, सबमें अैक्य होता, तो देश की भी ताकत बनती। आज असंख्य भेदों से भारत वैसा ही ग्रस्त है, जैसा की पहले था। गांधीजी ने कोशीश की थी। परंतु स्वराज्य-प्राप्त होते ही झगड़े बढ़ गये। अभी-अभी भाषावार प्रांतरचना में भी क्या तमाशा हुआ ? तो ये कुछ भयस्थान हममें अैसे पड़े हैं, जीनके रहते लश्कर का खर्च आधा कैसे हो पायेगा ? अीसलीअे हीम्मत भी नहीं होती। परंतु हम कहते हैं, जरा हीम्मत तो करनी चाहीअे। हीम्मत करेंगे, तो स्वराज्य का भान क्या होता है, अीसका भी अनुभव आयेगा।

लोग भी अैसे पराधीन मनोवृत्ती के बन गये हैं की हर समय सरकार का ही मुंह ताकते हैं। अगर वह मदद करती है, तो अुसकी स्तुती करते हैं। मदद नहीं करती है, तो नींदा करने लगते हैं। यानी वे अपने को सीर्फ स्तुती-नींदा करने के ही अधीकारी मानते हैं, पुरुषार्थ करने के अधीकारी नहीं !

(शीक्षक-शीक्षीकाओं के साथ, कोंडवायूर, पालघाट, ३-६-'५७)

सर्वोदय की दृष्टि :

स्व० भारतन्जी !

अभी-अभी जो व्यक्ति हमारे बीच खूब अच्छी तरह रहता और काम करता है, परन्तु एक ही क्षण में सबको ज्यों का त्यों छोड़ कर जब वह चला भी जाता है, तब आश्चर्य और दुख तो होता ही है, साथ-साथ यह भी महसूस हुए बगैर नहीं रहता कि प्राणी का भी कोई विश्वास है कि कब वह धोखा दे कर न चला जाय !

भारतन्जी के देहांत से कुछ ऐसे ही जज़बात खड़े हुए। काश, हम इन जज़बात को संजो कर रख सकें कि मानव-जीवन भी कितना क्षण-भंगुर है !

गांधीजी ने हर क्षेत्र में अच्छे से अच्छे लोगों की मानो एक कतार ही खड़ी कर दी थी। क्या राजनीतिक क्षेत्र, क्या सामाजिक क्षेत्र और क्या रचनात्मक क्षेत्र-सर्वत्र यही नज़ारा दीख पड़ता है। भारतन्जी ऐसी ही एक कतार के अगुवाओं में से थे, जो न सिर्फ अपने रचनात्मक कामों से, बल्कि निरहंकार अर्पणबुद्धि, मौलिक चिंतन, विस्तृत अध्ययन और गहरी दृष्टि के कारण भी गांधीजी के सच्चे अनुयायी बन गये थे। आये थे अपने अग्रज श्रद्धेय जे. सी. कुमारप्पा के द्वारा, लेकिन शीघ्र ही बापू के एक स्वतंत्र सेनानी भी बन गये। स्वतंत्रता-संग्रामों में वे साथ रहे, रचनात्मक कामों में वे साथ रहे, चिंतन और विचार-प्रसार में भी साथ रहे। इसीलिए आचार्य काकासाहब ने याद दिलायी कि "जेल में तो सब उन्हें 'रतन' ही कहा करते थे—ऐसा 'रतन', जो कार्यकर्ताओं एवं विद्वानों के बीच तेजस्विता के साथ प्रकाशमान रहता था।" थे वे भगवान् ईसा के अनुयायी, लेकिन वेदांत और रामानुज के तत्त्वज्ञान का प्रभाव भी साथ साथ उनके जीवन में उतरा था।

कुमारप्पा-बंधुओं का जो हिस्सा आजादी के संघर्ष में और राष्ट्र के नवनिर्माण में रहा है, वह काल के प्रवाह में भले ही विलुप्त-सा नजर आता हो, परंतु जब इतिहासकार गहराई में पैठ कर सबका लेखा-जोखा लेगा, तब वह उसका वास्तविक मूल्य आँके बिना रह नहीं सकेगा। श्रद्धेय जे. सी., जिन्हें भगवान् लंबी उमर दे, राष्ट्र का ऊँचा से ऊँचा पद भी उनके लिए छोटा पड़ेगा, ऐसी उनकी लियाकत, बुद्धिमत्ता, अधिकार एवं तपस्या है। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में भारतन्जी की भी रही। बहुतों को पता नहीं होगा, 'हरिजन' पत्र की जिम्मेवारी भारतन्जी लें, इसके लिए कोशिश कम नहीं होती थी। बल्कि, कोई भी ऐसे महत्त्वपूर्ण लेखन-संपादन आदि का जिम्मेवारी से भरा काम सामने आया कि पहली नजर भारतन्जी पर ही पड़ती थी। इसीलिए भारत-सरकार संपूर्ण गांधी-सिरीज के संपादन-प्रकाशन के महनीय कार्य का मुख्य भार उन पर सौंप कर निश्चिंत हो गयी थी और इसीलिए श्रद्धेय काकासाहब ने चिंता प्रकट की है कि इतनी आत्मीयता, अर्पण-बुद्धि और योग्यता के साथ यह काम करने की जिम्मेवारी अब कौन उठा सकेगा ? गांधी-तत्त्वज्ञान का उनका जो गहरा और व्यापक अध्ययन, मौलिक चिंतन और विवेचन था, वह उनकी हर रचना में इस योग्यतापूर्ण शैली में और अधिकारपूर्ण भाषा में उतरता रहता कि उसकी बराबरी बहुत ही कम जगह दीख पड़ती थी। वे केवल विचारक या लेखक ही नहीं थे, कर्मयोगी भी थे, इसलिए करीब-करीब दस साल तक अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ के सहायक मंत्रित्व के काल में प्रस्तुत संघ की अनेकविध रचनात्मक प्रवृत्तियों और कामों में प्रगति करके, बापू के लेफ्टनंट की जिम्मेवारी वे योग्यतापूर्वक निबाहते रहे। इस तरह कर्म और ज्ञान का सुंदर समन्वय उनमें हुआ था। इस कारण गांधी-तत्त्वज्ञान को समझ कर योग्यतापूर्वक उसका निरूपण मौलिक चिंतन के साथ करते समय उनकी लेखनी में प्राण-संचार होता रहता था। देश-विदेश का अनुभव, विविध विषयों का ज्ञान आदि सब इस काम में उनकी मदद ही करते थे। उनके परिचय में थोड़ा भी आने वाला यह सहज जान लेता था कि उनका स्वभाव भी कितना नम्र, शांत, जिज्ञासु और स्नेह से परिपूर्ण रहता था। गांधीजी की पीढ़ी के ऐसे एक-एक 'रतन' जब चले जाते हैं, तब जैसे एक अपूरणीय अभाव तीव्रता से महसूस होता है। परंतु काल के सामने किसका क्या वश ! उनके चरणों में हम सबकी नम्र श्रद्धांजलि है।

काशी, ता.२५-६ —लक्ष्मीनारायण भारतीय

हंगेरी का सबक़ !

यू. नो. की पंचराष्ट्रीय कमेटी ने हंगेरी की घटनाओं की जाँच पूरी कर ली है और अपनी रिपोर्ट भी पेश कर दी है। स्पष्ट ही यह एकपक्षीय जाँच रही है, क्योंकि न तो हंगेरी में उसे आने दिया गया, न हंगेरी-सरकार ने ही अपनी बाजू उसके सामने प्रस्तुत की ! फलतः हंगेरी के बाहर पहुँचे हुए निर्वासित, विद्रोही, अन्य सकारों के

www.vinoba.in

पास के दस्तावेज आदि ही रिपोर्ट के मुख्य आधार रहे हैं। परंतु कमेटी के अध्यक्ष ने कहा है कि हम भावोत्तेजित जनता का ही प्रतिबिंब यदि इस रिपोर्ट में प्रस्तुत करते, तो इसका स्वरूप इससे कहीं अधिक उग्र होता !

एकपक्षीय जाँच होने के कारण स्वभावतः रिपोर्ट में संपूर्णता तो आ नहीं सकती थी। कुछ गलत बातें एवं गलत आधार भी प्रस्तुत हो सकते हैं, परिणामतः निष्कर्षों में भी संपूर्ण तटस्थता संभव न हो सकी हो। तथापि कमेटी ने जो-जो बातें पेश की हैं, उनमें से चंद बातें तो सिद्ध ही हैं, भले ही हंगेरी सरकार ने एवं रूस ने रिपोर्ट को 'झूठों का पुलंदा' बताया हो।

हंगेरी का विद्रोह कैसे स्वयंप्रेरित जनविद्रोह था, कैसे वह बिना आयोजन के था, कैसे उन्हें बाहर से मदद की अपेक्षा थी और वैसी आशाएँ भी दी गयी थीं, पर मदद मिली नहीं, नेगी-सरकार ने कैसे जन-भावना को ग्रहण किया और कैसे रूसी सरकार ने उसे उखाड़ कर कादर सरकार की स्थापना की, कैसे राज्य की सुरक्षा-पुलीस ने और रूसी फौजों ने विद्रोह को कुचल कर असीम पाशविकता का परिचय किया और कैसे आज कादर-सरकार आंदोलन की जड़ें नेस्तनाबूद कर रही हैं—इन सब बातों का लेखा रिपोर्ट ने प्रस्तुत किया है !

हंगेरी का विद्रोह जन-विद्रोह था, इस तथ्य से शायद अब कोई इन्कार नहीं कर सकता, क्योंकि प्रतिक्रियात्मक या बाहरी शक्तियाँ जनजीवन में इतनी गहरी जड़ें जमा कर उसे विद्रोह एवं बलिदान के लिए टिका कर नहीं रख सकतीं ! अभी तक तो सरकार को अंतर्गत दमन का आश्रय लेना पड़ा है, यह इसीका स्पष्ट सबूत है। रही विद्रोह को कुचल देने की बात, सो बिना रिपोर्ट के भी यह प्रत्यक्ष ही था कि रूसी फौजों ने कादर सरकार का आधार लेकर उसे कुचला है और आज भी वे फौजें वहाँ जमी हुई हैं ! दूसरे पक्ष की ओर से इतना ही कहा जा सकता है कि रूस को नेस्तनाबूद करने के लिए अमेरिका ने इस मौक़े का लाभ उठाया अथवा यह विद्रोह ही पर-प्रेरित था ! फिर भी, हंगेरी का जनविद्रोह कुचल देने का तो कोई जवाब ही नहीं है ! हंगेरी की जनता को यह जो भुगतना पड़ा, उसके प्रति सारी दुनिया की सहानुभूति उमड़ आवे, तो कोई आश्चर्य नहीं। परंतु तब भी श्रद्धेय राजाजी ने समयोचित ही सलाह दी है कि रूस-अमरीका में निरस्त्रीकरण के बारे में परस्पर-समझौते का जो वातावरण आज बन रहा है, उसमें इस रिपोर्ट के कारण खलल न पहुँचे ! परंतु ये सलाहें कोई खास असर करेंगी, ऐसे आसार अभी तो नज़र नहीं आ रहे हैं ! इसी कारण लेबर पार्टी के नेता श्री गैटस्केल ने इंग्लैंड को आगाह किया है कि वह इस मामले में रूस के साथ भिड़ंत न कर बैठे !

तथापि यू. नो. द्वारा हंगेरी सरकार के बहिष्कारादि के कोई क़दम उठाये जायँ या न उठाये जायँ, तो भी हंगेरी का उद्धार तो हंगेरी की जनता पर ही मुख्यतः निर्भर है, यह स्पष्ट है। हंगेरी की जनता जिस तरह दबा दी गयी है, उसे देखते हुए वह अब उसी तरीक़े के सहारे पुनः शीघ्र उठ सकेगी, ऐसी उम्मीद नहीं दीख पड़ती ! मुक्ति-प्रयत्नों के लिए एक गहरी क़ीमत चुकाने के बावजूद यह स्थिति है ! दूसरी तरफ़ अलजेरिया का भी संघर्ष सामने है, जहाँ वह भी कम कीमत नहीं चुका रहा है !

ये सारे तथ्य इस बात की ओर ही इंगित कर रहे हैं कि पीड़ित-शोषित और गुलाम जनता को अपने परंपरागत तरीकों पर बुनियादी तौर पर सोचना होगा ! सशस्त्र क्रांति में वह कितना ही अधिक बलिदान कर जाती है, पर सवाल हल नहीं होता है ! क्योंकि जो तरीका जनता इस्तेमाल करती है, उस तरीके में राजशक्ति अब बहुत ज्यादा माहिर हो गयी है, इसलिए गुरील्ला युद्ध आदि की पद्धतियाँ भी इस युग के लिए अब अक्षम साबित होती जा रही हैं ! एक जमाना था, जब ऐसे रास्तों से जनता आजाद हो जाती रही और सशस्त्र जन-विद्रोह भी सफल होते रहे हैं। तथापि उनका समय अब बीत चला है, क्योंकि राज्यकर्ताओं को बाहरी फौजों की मदद तो खैर सहज ही मिल सकती है, परंतु स्वयं राज्यशक्ति भी आज कम ताकतवर नहीं रही है। जिस तरह संरक्षक-हिंसा ने अणु-परमाणु बम तक असीम तरक्की कर ली है, उसी तरह अंतर्गत दंडशक्ति ने भी राज्यसत्ता को हिंसा के अद्यतन साधनों से लैस होने को ही प्रोत्साहित किया है, ताकि जनता के विद्रोह को वह हर तरह से कुचल सके ! सारी शक्तियाँ राज्यसत्ता की मदद में जा पहुँचती हैं और अपनी फौज की मदद तो एक सामान्य बात ही हो गयी है।

इसलिए सत्ताएँ जिन शक्तियों से संपन्न होकर गुलाम जनता के विद्रोहों को कुचल देती हैं, ठीक उन शक्तियों से उलटी ताकतें जनता जब तक नहीं अपनायेंगी, तब तक उनके वास्तविक उद्धार की आशा नहीं है ! क्या हंगेरी आदि की जनता के लिए ऐसी कोई आशा निकट भविष्य में है ? अतः परिस्थिति से मजबूर होकर ही क्यों न हो, जनता को मौजूदा तरीका बदलना होगा और वह तरीका सिवा गांधीजी के तरीके के दूसरा हो ही क्या सकता है, जिसका कि एक प्रत्यक्ष प्रयोग हिंदुस्तान में हो चुका है ! इतने अधिक बलिदान सशस्त्र क्रांति में होते हैं, पर हंगेरी-अलजेरिया-साईप्रस आदि में जो बलिदान हुए हैं, उनसे शायद कम ही बलिदान सत्याग्रह की क्रांति में लग सकते हैं, अतः प्रश्न बलिदान का उतना नहीं; जितना विश्वास बदलने का और निष्ठापूर्वक उसी मार्ग पर चलने का है !

लेकिन गांधीजी का एकमात्र रास्ता एकमात्र ही इलाज है, इतना कहने से तो काम चल नहीं सकता। वह दुनिया से छिपी हुई चीज तो है नहीं। अतः जरूरत होती है, ऐसे शांति के, अहिंसा के रास्तों की ताकतें बार-बार प्रकट होती रहें, भिन्न-भिन्न रूपों से ही क्यों न हो, उनका दर्शन होता रहे, जैसे कि अभी जापान के कुछ लोगों ने क्रिसमस-द्वीप के अणुपरीक्षणों के लिए आत्मबलिदान का सोचा था ! नयी-नयी समस्याओं के निराकरण में भी अहिंसा की ताकतें प्रकट होती रहें, तो विश्व की पीड़ित जनता उस ओर आकर्षित होती है और उसे उसका एहसास होता है। हिंदुस्तान उसके लिए अधिकारी है ही, पर यह अधिकार उसे केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति की कीर्ति-गाथा तक ही महदूद न रख कर अन्य क्षेत्रों में भी आगे सिद्ध करते रहना होगा, तभी उसका असर जाग्रत रह सकता है ! प्रचार, शिक्षण आदि साधन फिर काम आते हैं। अणुयुग ने तो दुनिया के तमाम शांतिवादियों को आज चुनौती ही दे दी है ! अतः आज पैसिफिस्टों की एवं अहिंसावादियों की परीक्षा ही है कि क्या वे अत्याचारों आदि के अब निष्क्रिय दर्शक एवं निष्क्रिय विरोधक मात्र ही रहेंगे या शांति की शक्तियाँ भी प्रकट करेंगे ? स्पष्ट है कि ऐसी शक्तियाँ भी एकत्र आकर ही आज कुछ कर सकती हैं, अलग-अलग रह कर नहीं ! उसके बिना वे प्रभावकारी बन ही नहीं सकतीं और न पीड़ित जनता को प्रेरित करके नैतिक शक्ति का ऐहसास उनको करा सकती है ! जनता को परंपरागत राह से बचाने का यही एक मार्ग है, इसीलिए विनोबाजी 'सज्जन-शक्ति' के एकत्रीकरण का आवाहन सारी दुनिया को, भारत के द्वारा कर रहे हैं।

काशी, ता० २५-६-'५७ —लक्ष्मीनारायण भारतीय

बाबा राघवदासजी की पावन यात्रा से—

(शंकरदेव 'मानव' : लक्ष्मीचंद जैन)

ब्राह्म मुहूर्त्त में रात्रि का अंतिम प्रहर अपने अवसान की ओर लपका चला जा रहा था। बाबा राघवदासजी की टोली प्रातःकालीन उपासना के लिए बैठी। ईशावास्य उपनिषद का पाठ, नाम-स्मरणी और एकादश-व्रत। उपासना समाप्त हुई-न हुई कि बाबाजी ने ध्वनि शुरू की—"रघुपति राघव राजाराम।" पग बढ़ चले।

बाबाजी मध्यप्रदेश की यात्रा कर रहे हैं। बाबाजी को बिदा देने आये थे—खंडवा के प्रतिष्ठित सज्जन श्री जादवजी मारू, श्री रामचन्द्र भाई, सेठ गोविन्ददासजी आदि। श्री दादाभाई नाईक भी बाबाजी के साथ हो लिये।

शनैः शनैः बाबाजी के कदम बढ़ रहे थे–'रघुपति राघव राजाराम' के पावन उच्चारण के साथ। पावन वाणी, पावन पग, उषःकाल की पावन वेला और पावन संकल्प। सबकी दिशा एक थी। बाबाजी को फ़ुरसत नहीं थी कि बिदाई वेला का टीका तक लें ! श्रीमती मारू बा का आरती-थाल जैसा आया था, वैसा ही लौट गया !

यात्रा का प्रथम दिन था। कुतूहल और आनन्द-मिश्रित अनुभूति हमारे हृदयों में विचित्र-सी तरंगों का निर्माण कर रही थी। सारी प्रकृति आनन्दमयी थी। प्रभात-समीरण जागरण-गीत गा रहा था। उषा ने लाल चादर बिछा रखी थी—दिनमणि के स्वागत के लिए। गतिमान जगत् की सभी गतिविधियाँ चल रही थीं और उन्हींके समरूप बाबाजी के मंथर पग। आज कुल १३ मील चलना था। हमारा सुबह का पड़ाव ही लगभग ८ मील था। ६२ वर्ष के जर्जर शरीर, बूढ़ी हड्डियों और डेढ़ पसली की शक्ति के बाहर की बात थी। राह में बाबाजी थक गये। सड़क के किनारे वृक्ष की छाया में वे लेट गये—अपने दो फुट के आसन पर। शरीर पर की चादर मुड़ कर सिरहाने का काम दे रही थी। लगभग दो मिनिट बाद आँखें बंद कर लीं। फिर थोड़ी देर में उठ खड़े हुए और चल भी पड़े।

प्रतिक्षण मौत से झगड़ता हुआ यह पावन संत ऐसे ही चला जा रहा है ! इस पदयात्री का हर पग गाता है–मिल्टन के स्वर में स्वर मिला कर "वन फ़ाइट मोर।" अब तक जीवन में उसने कम संघर्ष नहीं झेले हैं, लेकिन फिर भी 'वन फ़ाइट मोर'–एक संघर्ष और, कह कर वह दुगुने उत्साह और ताकत से तरुणों को लजाता हुआ आगे बढ़ रहा है !

www.vinoba.in

बाबा राघवदासजी देश के उन गिने-चुने व्यक्तियों में से हैं, जिनका समग्र जीवन साधनामूलक, वृत्ति स्थितप्रज्ञ की और ध्येय उदात्त रहा है। वे अपने आप में एक संस्था ही बन गये हैं। त्याग, तपस्या, निस्पृहता, अर्पण उनके जीवन में ओतप्रोत हैं। और हमारी क्रांति भी तो ऐसा ही अर्पण माँगती है एवं त्याग और तप चाहती है! क्रांतिदेवी की उपासना करने वाला एक बाबा उसे निस्पृह, निर्मोही और त्यागी मिल गया है। सचमुच ही यह व्यक्ति अनूठा है। अत्यंत नम्र स्वर, सागर-सी गंभीर वाणी, सरस्वती की वीणा-सी सरस। ६२ साल का अनुभवी, सिर और दाढ़ी के शुभ्र श्वेत केश उसकी अनुभूति-गरिमा का गुणगान कर रहे हैं। अपनी साधारण आयु से नहीं, जनजीवन की आयु से भी १९१२ से जो निरंतर जनरव में अपने आपको विसर्जित ही करते चले आ रहा है। ऐसा निरहंकारी सेवक, डगर-डगर भूदान का संदेश मध्यभारत की जनता को सुना कर सोयी हुई आत्मचेतना को जनमानस में जगा रहा है! हर कदम पर मौत को एक टक्कर देता हुआ वह आगे बढ़ रहा है।

लगभग साढ़े नौ को वे अपने सुबह के पड़ाव पर थे। लोगों ने भावभीना स्वागत किया। बाबाजी ने ग्रामदान का संदेश दिया। फिर स्नान, भोजन और विश्राम का समय आया। मध्याह्न में बाबाजी श्री दादाभाई नाईक, श्री वि० स० खोड़ेजी आदि से आगे के कार्यक्रमों के संबंध में चर्चा करते रहे। पाँच बजे बाबाजी ने अगले पड़ाव के लिए प्रस्थान कर दिया। उसी शाम को हमारा पड़ाव भोवाखेडी था। यहाँ भूदान का कुछ काम हुआ है। यहाँ भूदान के एक निष्ठावान तरुण कार्यकर्ता श्री बाबूभाई भी हैं। स्वागत एवं प्रबंध उन्होंने किया। यह ग्राम भी कस्बा है। सारा गाँव बाबाजी का संदेश सुनने, दर्शन करने उमड़ आया था। युग-संदेश सुनने की, ग्राम-निर्माण की, जीवन को नयी दिशा देने की क्रांतिमयी भावनाएँ थीं, तो कुछ धर्म-भावनाएँ थीं—बाबाजी के दर्शन का लाभ लेकर जीवन धन्य कर लेने की। बाबाजी लगभग एक घंटे तक बोले। साढ़े दस को भाषण समाप्त हुआ। बाबाजी ने मौन ले लिया और सचमुच बिस्तर पर लेटने के दस मिनिट बाद, ६२ वर्ष का वह भोला बालक अपनी समस्त बाल-सुलभता को बटोर निद्रा माँ की शांतिमयी गोद में कलोल करने लगा।

फिर दूसरे दिन वही तप-यात्रा, वही क्रांतियात्रा, वही पावन यात्रा। ऐसा ही नित्य का जीवन-क्रम और जन-सागर में हर समय विलयन की उत्कटता!

प्रतिदिन हमारे दो पड़ाव होते हैं। पदयात्री-दल में करीब २०-२२ साथी हैं। निमाड़ जिले के तथा मध्यभारत के अन्य जिलों के कार्यकर्ता पदयात्री-दल में हैं। ग्रामवासी स्थान-स्थान पर पूजा, आरती, शहनाई आदि से श्रद्धापूर्वक स्वागत करते हैं। समय-दान, भूदान, संपत्तिदान भी होता रहता है!

पदयात्रा के दौरान में ग्रामदान के लिए अपनी मालकियत की समस्त भूमि का दान यात्रा में कुछ भाइयों ने किया।

ग्रामवासियों की सभा के अलावा गाँव के मुख्य-मुख्य लोगों से चर्चा का भी आयोजन होता है। **ग्राम विरुल में एक पावन संकल्प ग्रामवासियों ने किया कि सन् '५७ में ही विरुल का ग्रामदान वे करेंगे।**

यात्रा के दरमियान नये-नये कार्यकर्ता, नये-नये समाज-सेवक सामने आ रहे हैं। कई नये कार्यकर्ताओं से संपर्क हुआ। यह भी अनुभव आया कि पुराने कार्यकर्ताओं की कसौटी हो रही है। हाँ, नवयुवक और विद्यार्थी-वर्ग इस नये कार्यक्रम के प्रति कुछ रुचि अवश्य ले रहा है। दान का प्रवाह भी शुरू हो गया है! **ग्राम टेमला (भीकनगाँव) के दो भाइयों ने अपना सर्वस्व-दान देकर ग्राम-संकल्प जाहिर किया।** ऐसे पावन प्रसंग नित्यप्रति ही होते रहते हैं।

ग्रामसभा आदि में बहनों की उपस्थिति काफी रहती है, यह इस यात्रा की एक विशेषता है। उस रोज बाबाजी ने खरगोन में स्त्रियों की आम सभा में कहा—"मैंने तो माँ-बहनों का ही काम करने का बीड़ा उठाया है। ग्राम-परिवार के निर्माण की हमारी योजना है, परंतु परिवार की केंद्रबिंदु तो माँ है। माँ शक्तिमयी है। चूँकि नारी को सारा परिवार ही संभालना पड़ता है, अतः आर्थिक भीषणता एवं शोषण का सामना भी उन्हें ही करता पड़ता है। अतः वे ही 'ग्राम-परिवार' बनाने का आदर्श भी प्रस्तुत करेंगी।"

बाबाजी के भाषणोपरान्त सात बहनों ने भूदान-आंदोलन के लिए समयदान की भी घोषणा की।

रात को प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा: "विश्व की नाजुक घड़ी में मानव के चैतन्य अणुओं को जागृत कर विनोबा भौतिक शक्ति के मुकाबले एक महान् वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं। चैतन्य अणु-शक्ति को जगाने की विभिन्न प्रकियाओं में मनुष्य को सर्वप्रथम जागना पड़ता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बापू थे। ग्रामदान के जरिये विनोबा मानव की चैतन्य-शक्ति को ही एकत्रित करने का सफल प्रयोग कर रहे हैं।"

सभा का समारोप करते हुए श्री वि० स० खोडेजी ने ग्रामदान-प्रीत्यर्थ अपनी समस्त भूमि एवं संपत्ति के स्वामित्व के विसर्जन की पावन घोषणा की!

पंजाब की चिट्ठी

पंजाब-भूदान-सतत पदयात्री-दल २२ अप्रैल '५६ से अखंड भूदान-प्रचारार्थ निकला है। मार्च '५७ तक कुल १९४८ मील की पदयात्रा समाप्त की। अप्रैल में पटियाला और अंबाला जिले में यात्रा हुई। सरकार द्वारा हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक स्कूल, कॉलेज और पंचायती पुस्तकालय में भूदान-साहित्य प्रचारित किया गया है। जनता में धर्मभावना और सहकारिता की प्रवृत्ति है। लोग घरों में ताला भी नहीं लगाते! १६ अप्रैल को सोहाना गाँव के आसपास के गाँवों में भूदान करने के लिए काफी कार्यकर्ताओं ने संकल्प किया। दो भाइयों ने लोक-सेवकत्व के लिए निष्ठा-व्रत लिया। १८ अप्रैल 'भूक्रांति दिवस' राजापुरा पड़ाव में बीबी अमतुस्सलाम की अध्यक्षता में मनाया। सभी रचनात्मक संस्थाओं के कार्य-कर्ताओं और विद्यार्थियों ने पदयात्री-दल का स्वागत किया। डॉ० गोपीचंद भार्गव, पं० ओंप्रकाशजी त्रिखा विशेष रूप से कार्यक्रम में शामिल हुए थे। पदयात्री-दल के नायक श्री यशपालजी मित्तल ने विभिन्न स्तरों की संस्थाओं से चर्चाएँ कीं। सबने सहयोग का विश्वास दिलाया। दानपत्र भरे गये। सरकारी सहयोग काफी मिला। पटियाला में बहनों की सभा भी ली गयी। भूदान के लिए लोगों के दिल में गहरी श्रद्धा है। २४ अप्रैल को नाभा में ग्रामसेवक-विद्यालय और स्कूल-शिक्षकों की सभा में काफी संपत्तिदान मिला। समयदान-पत्र भी भरे गये। रात की सार्वजनिक सभा में जनता ने बड़ी भारी संख्या में संकल्प जाहिर किया। वैसे ही संकल्प सरहन्द और बसी पठाना के लोगों ने किये। भूदान-कार्य के लिए पटियाला जिला कठिन माना जाता है, परंतु हमें लगा कि थोड़े से प्रयत्न से ही वह अच्छा तैयार किया जा सकता है। अंबाला जिले में, खासकर खरड़ तहसील और चण्डीगढ़ के इलाका में कार्य की काफी गुंजाइश है। कताई-मंडल द्वारा यहाँ पहले ही भूदान-कार्य का प्रसार काफी हुआ है।

७ मई को अ. भा. भूदान-पदयात्री-दल भी खरड में हमारे साथ आ मिला। खरड में लोगों ने संकल्प जाहिर किये। कुराली, खरड और चंडीगढ़ में बहुत से नौजवानों ने समयदान और संपत्तिदान दिया। इन पंद्रह दिनों में अधिकाधिक दानपत्र शिक्षक समाज की ओर से मिले। कुछ शिक्षक और विद्यार्थी पदयात्रा में भी साथ रहे और बिना किसी पूर्वशिक्षण के उन्होंने काफी सफलतापूर्वक प्रचार-कार्य किया। शिक्षक-छात्रों ने १५ मई तक ११३ मील की पदयात्रा में १८ गाँवों से २४५०) वार्षिक के संपत्तिदान-पत्र, ३० सेर बीजदान, १५ बीघा भूदान, १ मास १८ दिन के श्रमदान के दानपत्र प्राप्त किये। २५०) की साहित्य-बिक्री की। ३२ नये यात्री हमारे दल में शरीक हुए। जगह-जगह संस्थाओं के सेवक, बहनें बच्चे शामिल होते गये।

रादौर, लाडवा, इंद्री, करनाल, निलोखेड़ी, कुरुक्षेत्र आदि स्थानों में स्कूलों में यात्री-दल के लोगों ने अलग-अलग बँट कर विद्यार्थियों और शिक्षकों की सभाओं में भूदान-प्रचार किया। हमारा यह दृढ़ विचार होता जा रहा है कि आज शिक्षक व विद्यार्थी वर्ग को इस क्रांतिकार्य के लिए बड़ी आसानी से तैयार किया जा सकता है। खास तौर से ग्राम-परिवार और ग्रामदान की कल्पना बच्चे बहुत जल्द ग्रहण करते हैं। वातावरण-निर्मिति के लिए यह बहुत जरूरी है। करनाल के दयालसिंह कॉलेज के विद्यार्थियों ने खादी-ग्रामोद्योग के व्रत-पालन के भी संकल्प जाहिर किये।

२२ अप्रैल '५६ से ३१ मई '५७ तक की पंजाब भूदान सतत पदयात्री-दल की कुल २३४२ मील की पदयात्रा में ४४५ पड़ाव हुए। प्राप्ति निम्न प्रकार हुई:

भूमि: ४६१० बीघा		**साहित्य-बिक्री ३४५०)**		**भूमि-वितरण १३१० बीघा**	
संपत्तिदान	३२२५०)	ग्राहक	३९८	परिवार	७३
हल	४५	सूतांजलि	९६ गुंडियाँ	जीवनदानी	६
बैल	६	सूत्रदान-प्राप्ति	६६ गुंड़ियाँ	नये यात्री	४०५
बीज	२९५ मन	श्रमदान	२२ वर्ष ३ मास	साधन-दान	३१०)
मकान	८	समयदान	२७ वर्ष ७ मास	लोकसेवक	६

—यशपाल मित्तल

---

www.vinoba.in

कार्यकर्ता की ताकत कैसे बढ़े ?

(विनोबा)

गांधी-निधि के कार्यकर्ताओं के बारे में सवाल पूछा गया है।

गांधी-निधि ने इस आन्दोलन को बहुत मदद दी है। मेरा ख्याल है कि कोई १५-२०लाख रुपये इस आन्दोलन के लिए खर्च हुए हैं। उस निधि का यह जो उपयोग हुआ है, उसमें सम्पत्ति ज़ाया नहीं गयी। ४० लाख एकड़ जमीन, १७ लाख दानपत्र, साहित्य का व्यापक प्रचार, कम-से-कम चार-पाँच करोड़ लोगों द्वारा हमारे व कार्यकर्ताओं द्वारा विचार सुना जाना, पच्चीस सौ ग्रामदान आदि काम स्थूल रूप में इस आंदोलन में अब तक हुए हैं। देश में आशा और श्रद्धा पैदा हुई है। क्या उस सम्पत्ति का यह उत्तम उपयोग नहीं हुआ है ? अगर हम अभी भी निधि से मदद माँगते, तो न देना उनके लिए असम्भव था, लेकिन हम ही ने निधि-मुक्ति का प्रस्ताव रखा ! उस हालत में हम अपेक्षा नहीं करते कि गांधी-निधि के कार्यकर्ता अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान में जायें। लेकिन जहाँ वे हैं, वहीं आस-पास १०-१५ मील के क्षेत्र में काम करें। इतना करना उनके लिए भी सब तरह से अच्छा है। वैसे, गांधी-निधि से कोई बात इस सम्बन्ध में करनी है, तो हम स्वयं वह कर सकते हैं और वे सोच भी सकते हैं। उस संस्था में हमारे परिचय के ही मित्र हैं। फिर भी हम उनको कुछ नहीं कहने जायेंगे। **जब निधि-मुक्ति की, तब सीधा जनतात्मा पर विश्वास रखा। हम अपने को समर्थ समझते हैं, जनता और हम देख लेंगे, उसके लिए हम अपने मन में निःशंक हैं।**

शक्तिहीन या शक्तिशाली ?

लेकिन हम चाहते हैं कि ये जो सारी संस्थाएँ हैं, वे परस्पर-पूरक हों। कार्यकर्ता एक स्थान में बैठ कर न वहाँ खादी का प्रवेश करा सकेगा, न मजदूरी की विषमता मिटा सकेगा, न सर्वोदय-साहित्य ही पहुँचा पायेगा। अगर कोई इस तरह के प्रयत्नों में शक्ति लगाने के लिए किसी कोने में पड़ा है, तो गांधी-निधि से जो सहायता मिलती है, वह यों ही खतम हो जाने वाली है। अगर हम चाहते हैं कि गांधी-निधि समाप्त होने के बाद भी ये कार्य चलें, तो कार्यकर्ताओं को उस-उस क्षेत्र में अपनी शक्ति बनानी चाहिए। गांधी-निधि भी यह नहीं चाहेगा कि उसके कार्यकर्ताओं की शक्ति क्षीण हो और वे निस्तेज बनें। कार्यकर्ता अपनी-अपनी अक्ल का उपयोग करते हैं, तो जिस क्षेत्र में वे हों, वहाँ वे अपना प्रभाव बना सकते हैं। इतना ही उन कार्यकर्ताओं के लिए कहना है।

हाँ, किसीको यदि ऐसा लगे कि वह काम छोड़ कर भूदान में कूदना है, तो बात अलग है। इस तरह कुछ लोगों ने किया भी है। यह अपनी-अपनी शक्ति का और वृत्ति का विषय है। **पर जब तक वे गांधी-निधि के कार्यकर्ता हैं, तब तक हम उनसे यही अपेक्षा करते हैं कि जो जिस स्थान में हैं, वे वहीं पर काम करें। दूसरी संस्थाओं के भी जो कार्यकर्ता हैं, वे भी अपनी-अपनी संस्था को व्यापक मर्यादा में ही रखें।**

हर साधन मुक्ति है, बन्धन नहीं !

१९४० की बात। मैं परमधाम पवनार में था। बापू सेवाग्राम में थे। बीच में सिर्फ तीन-चार मील का फासला, पर अक्सर हम एक-दूसरे से मिलते नहीं थे, दोनों अपने-अपने काम में लगे थे। एक दिन बापू ने चिट्ठी भेज कर मुझे सेवाग्राम बुलाया और कहा : "व्यक्तिगत सत्याग्रह में तू आ सकेगा, तो मुझे चाहिए। मेरे काम में मदद मिलेगी। तुमको कहने में मुझे जरा संकोच हो रहा है, क्योंकि तेरे पीछे बहुत सारी संस्थाएँ हैं। फिर वे किस तरह चलेंगी ? लेकिन तू आ सकेगा, तो मेरा काम होगा।" व्यक्तिगत सत्याग्रह के १०-१२ दिन पहले की यह बात है। मैंने कहा, "मैं तो अभी तैयार हूँ। अगर आप चाहते हैं कि वापिस जाकर आना चाहिए, तो ही मैं जाता हूँ। यमराज का बुलावा आयेगा, तो क्या हम इंतजाम कर सकेंगे ? उससे कम कीमत आपके आमंत्रण की नहीं है।" फिर वे बोले, "लेकिन संस्था का क्या होगा ?" मैंने कहा, जिस तरह आज चलती है, वह चलेगी। मैंने संस्था का अपने लिए किसी तरह का कोई पाश नहीं रखा है। यह मेरा जीवन-सूत्र ही रहा है। काम तो मैं कोई-न-कोई करता ही रहा। **परंतु मैं जानता हूँ और जानता था कि हर साधन मुक्ति के लिए है, बंधन के लिए नहीं।**

अभी श्री आर्यनायकमूजी तमिलनाड में हमारे साथ ग्यारह महीने रहे। वे समझ गये कि यह जो काम हो रहा है, वह नयी तालीम की पूर्ति में ही है। उसके बाद अखिल भारत नयी तालीम-संघ ने प्रस्ताव किया कि अभी तक हमने प्रोबेसिक, पोस्ट बेसिक, यूनिवर्सिटी बेसिक का हो सका उतना काम किया और देश के सामने एक पद्धति रखी। वह अपने आप में परिपूर्ण है। अब उसका उपयोग करना, न करना सरकार पर और लोगों पर निर्भर है। लेकिन अब इसके आगे उस प्रयोग को चलाने के लिए हमारी जरूरत नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ग्रामदान के कारण नयी तालीम के लिए विशाल क्षेत्र खुल गया है। अब गाँव को शाला समझ कर काम करना होगा। अब ग्रामराज्य का मकान बनाने के लिए नयी तालीम को लगना चाहिए। फिर बाबा का एक घंटे की पाठशाला का जो सुझाव है, उसका भी विचार हो सकता है।

नयी तालीम के क्षेत्र

नयी तालीम-संघ के जो बड़े-बड़े सदस्य हैं, उन सबकी अनुमति से इस तरह का प्रस्ताव पास हुआ है। यह मिसाल इसलिए दी कि आप सोचें कि क्रांतिकारक हृदय का मनुष्य किस तरह सोचता है। सरकार भी कोशिश कर रही है, नयी तालीम चलाने की। पता नहीं, उसको नयी तालीम कहें या और कुछ ! लोग नयी तालीम चाहते हैं, ऐसा भी दीखता नहीं ! वे तो यही तालीम चाहते हैं, जिससे बड़ी-बड़ी नौकरियाँ मिलती हैं। इसलिए नयी तालीम के लिए अवकाश तो वहीं होगा, जहाँ लोग विचार उठाते हों। नहीं तो सरकार की तरफ से वह गाँवों में ठूँसी तो जायगी, परंतु हम जो तालीम चलाना चाहते हैं, वह नहीं चलेगी। इस वास्ते नयी तालीम के लिए उत्तम क्षेत्र है ग्रामदान।

कुछ दिन हमारे साथ कृष्णदास गांधी भी घूमते थे। उन्होंने कोशिश की कि जगह-जगह ग्राम-संकल्प हो। ग्राम-संकल्प याने पूरा गाँव तय करे कि हम खादी तैयार करेंगे और खादी ही पहनेंगे। उसके बाद नयी तालीम वगैरह दूसरी चीजें और उनके परिणाम स्वरूप ग्रामदान भी हो सकेगा। मैं कहता हूँ, पहले ग्रामदान, बाद में दूसरी चीजें आ ही जायेंगी। पर मैंने दोनों पद्धतियों को प्रोत्साहन दिया। मुझे वाद नहीं करना था। **हम तो वर्तमान सत्यकारी हैं। भूत-भविष्यवादी नहीं।** वर्तमान काल में ही सत्ययुग लाना चाहते हैं। ग्राम-संकल्प कुछ आसान होता है, क्योंकि उसमें मालकियत छोड़नी नहीं पड़ती। बाद में शायद छोड़नी पड़े। परंतु काम आसान हो या कठिन हो, लेकिन करने पर ही तो वह होगा। प्रयत्न नहीं होगा, तो आसान चीज भी नहीं होगी। लोग आज खादी का उत्पादन बढ़ाने में लगे हैं। नफा-नुकसान सोचना पड़ता है, खादी बेचनी पड़ती है। ऊपर से मदद लेते हैं, तो प्रेशर आता है कि इतने अंबर चरखे चलाने चाहिए आदि, तो वह चक्र चलता ही रहता है। ऐसे चक्र में घूमते-घूमते ग्राम-संकल्प कराने के लिए फुरसत तो चाहिए ! कहते हैं, सच्चे ढंग से ग्राम-संकल्प होते हैं, तो अल्प भी अच्छा है। वह भी एक अप्रोच है। पर वह लगातार होना चाहिए !

दरअसल अपने देश में सातत्य-योग की ही कमी है। कोई भी काम अखंड चला है, यह नहीं दिखायी देता। आप नयी तालीम, खादी आदि का काम करते हैं, इससे हमको खुशी है। परंतु उस काम में तेज पैदा हो, ऐसी दृष्टि चाहिए। कार्य की पूर्ति में कुछ करना चाहिए। संस्था को व्यापक बना सकें, तो उसमें ग्रामदान आता ही है। एक भाई हमसे कह रहे थे कि वे पालघाट के खादी-भंडार में गये थे। वहाँ 'भूदान काहलम्' (साप्ताहिक) का बंडल यों ही पड़ा था, खोला भी नहीं गया था ! जहाँ स्वयं पढ़ने की ही इच्छा नहीं है, वहाँ वह घर-घर पहुँचाने की व्यवस्था कैसे हो ? इस तरह बहुत जड़तापूर्वक काम चल रहा है। हम चाहते हैं, ताकत बढ़े, कार्यकर्ता तेजोहीन न हों। और तेजस्विता बढ़ाने का ही यह आंदोलन है।

एकत्र होना होगा !

हम रचनात्मक कार्य को तोड़ने नहीं जा रहे हैं, बल्कि बढ़ाने जा रहे हैं। उसके लिए बुनियाद बनाने की बात है। आपका काम खूब फैलेगा और उसका रंग सरकार को लगेगा। व्यापक ग्रामदान होंगे, तो सरकार की पंचवर्षीय योजना में क्या बदल नहीं होगा ? मानो लड़ाई छिड़ जाय, अनाज के भाव बढ़ जायँ, तो पंचवर्षीय योजना भी गिर जायेगी। उस हालत में जो ग्रामदान हुए हैं, वे ही बचेंगे। सरकार भी तब समझेगी कि ग्रामदान याने एक "डिफेंस मेज़र" है, क्योंकि एक-एक गाँव के लिए योजना की गयी थी। उस दृष्टि से देखो, तो समझ में आयेगा कि ग्रामदान ही बुनियाद है।

यहाँ कोई गांधी-निधि का कार्यकर्ता है, कोई कस्तूरबा-ट्रस्ट का है, कोई नयी तालीमवाले हैं, कोई खादीवाले हैं, तो ग्रामोद्योग-खादी-ट्रस्ट के भी हैं। अलावा जो सरकार के एक्सटेन्शन सर्विस और कम्युनिट प्रोजेक्ट में हैं, वे भी रचनात्मक कार्यकर्ता ही हैं। कई और भी संस्थाएँ हैं। इन सबको समझना चाहिए कि वे अलग-अलग काम करेंगे, एक-दूसरे से अलग रहेंगे, तो मारे जायेंगे, टिकेंगे नहीं, क्योंकि हमारी चारों ओर हमारे काम के खिलाफ वातावरण है। उस हालत में आप चाहते

www.vinoba.in

हैं कि लोग आपकी राय पर चलें, आप चाहते हैं कि हमारा प्रभाव प्लानिंग पर हो, तो वह कैसा होगा ? गांधी-निधि का एक अकेला कार्यकर्ता किसी स्थान में स्वर्ग निर्माण करना चाहता है, तो आसपास सर्वोदय का ही प्रचार करना होगा। ५-६ साल पहले सर्वोदय की कोई भी कीमत नहीं थी दुनिया में। लोग समझते थे, यह पुराने जमाने का दकियानूस नमूना है। परन्तु भूदान के कारण विश्वास पैदा हुआ और विरोधकों में भी श्रद्धा बढ़ी। सर्वोदय-विचार तो अच्छा मानते थे, परन्तु सर्वोदय आज आ सकेगा, यह श्रद्धा नहीं थी। भूदान के कारण यह श्रद्धा पैदा हुई है। व्यवहार में परिवर्तन लाने की शक्ति सर्वोदय में है, ऐसा भास दूसरों को हो रहा है। परदेश में भी हिन्दुस्तान की कीमत बढ़ी है। एक जमाना था, जब कम्युनिस्ट भी समझते थे कि यह मूढ़ मनुष्य है, लेकिन अब उनको भी इस कार्य के लिए आदर पैदा हुआ है। लोगों का आत्मविश्वास बढ़ा है। इसलिए ग्रामदान की बुनियाद पर एकत्र होकर सबको काम करना चाहिए।

(रचनात्मक कार्यकर्ताओं से, परली ८-६-'५७)

ग्रामदान की राह पर—

(बाबू कामत)

हमारी पदयात्रा के सिलसिले में हनगल तालुके में पहला गाँव लखमापुर मिला। इस गाँव का पूर्ण दान हो सकता है, ऐसी जानकारी मिली थी।

गाँव में पहुँचते ही एक घर के सामने रुके, जहाँ चार-छह आदमी बैठे हुए थे। पूछा—"इस गाँव में मंदिर, पाठशाला या चावड़ी कहाँ है ?"

उत्तर : "पड़ोस का यह छप्पर ही सब संभाल लेता है !" जवाब देने वाला नौजवान था। फिर उसने हँस कर पूछा—"कहाँ से आ रहे हैं ?" हमने अपनी बात बतायी और कहा, "सारी जमीन गाँव वालों के बीच बाँटने की बात कहने के लिए हम आये हैं ?"

उसने हमसे और जानकारी ली। सवाल-जवाब किये। फिर वहीं लोगों से कहने लगा, "क्या बढ़िया काम है ! हम इसी काम को अपना 'मत' देंगे।" चुनाव की भाषा वह भूल नहीं पाया था ! फिर कहा, "हमारे गाँववालों को भी कृपया यह ठीक से समझा दीजिये।" यह स्वागत हमारे लिए बड़ा प्रोत्साहक था।

लखमापुर के लोग पराधीन वृत्ति के नहीं दिखे। इसका कारण है, शंकर शास्त्री शिक्षक, जो शिक्षक भी हैं और स्वयं पाँच एकड़ जमीन भी खुद करते हैं।

दोपहर उनसे बातें हो रही थीं कि कुछ शोर सुनायी दिया। वे भी गये, मैं भी। देखा कि एक शख्स अपनी पत्नी को गुस्से से पीट रहा है। घटना का विवरण यह मिला कि उस शख्स के बड़े भाई, एक बच्चा पीछे छोड़ कर चल बसे थे। लड़का खेती-बाड़ी करता था। उस शख्स को याने चाचा को, जिसका कि नाम हनुमप्पा था, काम के सिलसिले में बाहर जाना पड़ा। चाची और लड़के में कुछ चख-चख हो गयी और छत्तीस घंटे तक लड़के ने खाना नहीं खाया। हनुमप्पा को लौटने पर यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अपनी पत्नी को इसीकी सजा दी थी ! हमने उन्हें काफ़ी समझाया। मालूम हुआ, चाची भी उस बच्चे पर बहुत प्यार करती है और लड़का भी कामचोर नहीं था, दूसरे के घर काम पर जाने से जो गलत-फहमी हुई, वही चख-चख का कारण बनी। मारना गलत हुआ, यह वह हमारे समझाते ही तुरंत समझ गया।

चचेरी बहन ने हठ करके इस बीच भाई को दूध पिला ही दिया था, यह भी जान कर हनुमप्पा खुश हो गया। उस लड़की का पति भी वहीं रहता था। मालूम हुआ कि हनुमप्पा ने एक लड़के को बाहर से बुला कर एक नौकर के तौर पर रखा, पर उसकी नेकी देख कर उसको अपनी लड़की भी दे दी !

सायं सभा में इसी हनुमप्पा ने ऐलान किया कि "ग्रामदान के लिए वह अपनी सारी जमीन दे देता है।" उससे प्रेरित होकर और भी जमीन-मालिक सर्वस्व-समर्पण के लिए तैयार हुए।

फिर भी यह ग्रामदान अभी नहीं हो पाया है ! क्योंकि दुबारा हम लोग उधर नहीं जा पाये, अभी हनुमप्पा की नीति-प्रीति हम सब घरों में नहीं फैला पाये। लेकिन हैं उसीकी राह पर।

कर्नाटक के देहातों में ऐसे कई हनुमप्पा छिपे पड़े हैं। काश ! हम उन्हें ढूँढ़ सकें।

ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—मान लीजिये कि एक व्यक्ति की ग्रामदान के गाँव में जमीन है, जो उसने ग्रामदान में दे दी है, लेकिन बाहर के गाँव में भी उसकी जमीन है, तो वह शख्स ग्रामदानी समाज का व्यक्ति बन सकता है ?

विनोबा—हाँ, बन सकता है, अगर वह ग्रामदान के गाँव में रहता है और वहाँ की सारी जमीन उसने ग्रामदान में दे दी है।

प्रश्न—क्या वह अनेक ग्रामदानी गाँवों का भी सदस्य रह सकता है ?

विनोबा—मान लीजिये कि एक मनुष्य की जमीन चार गाँवों में है और चारों गाँव ग्रामदान हुए। रहता है वह एक ही गाँव में, तो भी वह चारों गाँवों का सदस्य बन सकता है। परंतु हम सिफारिश करेंगे कि वह चारों जगह का सदस्य न रहे। जब वह चारों गाँवों में नहीं रहता, तो जहाँ नहीं रहता, उसकी उसको आसक्ति क्यों ? वह उस गाँव से कुछ लाभ चाहता है, तो गाँववाले दे देंगे। लेकिन वह खुद ही उसे छोड़ दे, तो अच्छा ही है। दूसरे गाँव से लाभ चाहे, तो मिलेगा। परंतु मान लो कि किसी शख्स की जमीन २५ गाँवों में है और सारे गाँवों का ग्रामदान हुआ। अब वह शख्स अगर कुल गाँवों में सदस्य बनना चाहता है, तो क्या वह कुल गाँवों की ग्राम-सभाओं में हाजिर रह सकता है ? यह नहीं बनेगा। इस वास्ते जो शख्स गाँव में हाजिर नहीं है, गैरहाजिर रहता है, तो उसको उस गाँव का सदस्य बनने का आग्रह नहीं रखना चाहिए। कुल जमीन गाँव को देनी चाहिए और लाभ का भी आग्रह न रखें, तो अच्छा। फिर भी वह लाभ चाहता है, तो उस गाँव के लोग उसको उतना दें।

प्रश्न—ग्रामदानी गाँव का एक व्यक्ति बाहर नौकरी करता है और वेतन पाता है, तो क्या वह संपत्ति उसे उस गाँव को दे देनी होगी ?

विनोबा—हर बात प्रेम से और विवेक से होनी चाहिए। उसकी अगर नौकरी है और उसने जमीन दान में दे दी है, तो वह और कुछ भी नहीं माँगेगा। पर वह यह भी कह सकता है कि मुझे नौकरी तो है, परंतु वह पूरी नहीं पड़ती, इसलिए गाँव के लोगों को जितनी जमीन आप देंगे, उससे कम ही जमीन मुझे दें। लेकिन मुझे जमीन की जरूरत है। वह यह भी कह सकता है कि सबको जितनी जमीन दोगे, उतनी दो, मैं जमीन चाहता हूँ, हाँ, अपनी नौकरी का पैसा मैं गाँव को दूँगा।

प्रश्न—ग्रामदानी गाँव का जो व्यक्ति बाहर रहता है, वह उस गाँव का सदस्य रह सकता है क्या ?

विनोबा—जो व्यक्ति गाँव के बाहर रहते हैं, वे मेंबर बन कर क्या चाहते हैं ? गाँव में रहें, तो अच्छा ही है। पर बाहर रहते हैं, तो गाँव के सदस्य क्यों बनना चाहते हैं ? दान देने वाला इस तरह माँगता नहीं। लोग ही सोच कर दे देते हैं, तो गाँव का सदस्य बनना जरूरी नहीं है। गाँव के लोग मदद दे सकते हैं।

प्रश्न—जो ग्रामदान में शामिल नहीं हुए हैं, उनकी जमीन गाँववाले लीज पर ले सकते हैं क्या ? और उसका उचित हिस्सा जमीनवाले को मिले, इस तरह कानूनी रक्षण भी उनको मिल सकता है क्या ?

विनोबा—मान लो कि सौ व्यक्तियों में से दो व्यक्तियों ने अपनी जमीन ग्रामदान में नहीं दी है। अब गाँव की सब मिल कर जो गाँव-सभा बनेगी, वह उनकी जमीन की काश्त करेगी। आखिर ये जो दान नहीं देते, वे स्वयं कृषि करते भी नहीं। स्वयं करते, तो ग्रामदान में शामिल हो जाते। परंतु वे शामिल होना नहीं चाहते ! इसका मतलब यह है कि एक तो वे स्वयं काश्त नहीं करते या तो उनके पास जमीन ज्यादा है। उनकी जमीन की काश्त ग्रामदान के पहले गाँव की रीति से मजदूर ही करते थे। लेकिन अब गाँव के मजदूर स्वतंत्र रीति से उनसे बात नहीं करेंगे, ग्रामसभा बात करेगी। वह कहेगी, तुम्हारा खेत हम प्रेम से करेंगे। पहले आपको देखरेख करनी पड़ती थी, अतः अब देखरेख की भी जरूरत नहीं है। फिर प्रामाणिकता से जो उसको मिलता रहा, वह उसको ग्रामसभा देगी और उसको प्रेम से जीत लेगी।

अब यह सवाल नहीं उठता कि क्या ग्रामसभा जमीन लीज पर करेगी या नहीं ! ग्राम-सभा करेगी, तो प्रेम से करेगी ! इससे कानून से बढ़कर लाभ मिलेगा। कानून के जरिये कुछ नहीं होगा। मालिक भी समझेगा कि कानून से जितना लाभ नहीं मिलता, उतना मुझे प्रेम से मिलता है। परंतु वह अगर कानून का आधार चाहेगा, तो वह खोयेगा—जैसे, बाप-बेटे के बीच कानून आता है, तो होता है !

(मायन्नूर, पालघाट, २१-५-'५७)

---

www.vinoba.in

शिक्षक सच्ची आजादी कैसे ला सकते हैं?

(विनोबा)

हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिल कर दस साल हुए। अंग्रेजों के भार से हिन्दुस्तान मुक्त हुआ, परंतु उतने से हम स्वतंत्र हुए, ऐसा नहीं कह सकते। स्वराज्य हासिल हुआ यह तब कहेंगे, जब हर गाँव या हर मनुष्य, हर बच्चा महसूस करेगा कि मुझे स्वराज्य मिला। सूर्योदय का अनुभव हर व्यक्ति करता है, वैसे ही स्वराज्य का अनुभव हर व्यक्ति को होना चाहिए। जैसे आरोग्य का अनुभव मनुष्य अपने अंदर करता है, वैसे स्वराज्य का अनुभव अंदर होना चाहिए, स्वराज्य का अनुभव हर मनुष्य, हर प्राणी जानता है। एक चूहा पिंजड़े में पकड़ा जाता है, तो उसकी छटपटाहट होती है, परन्तु कभी-कभी प्राणियों को पिंजड़े में रखते हैं, उनकी खिलाई-पिलाई का इंतजाम करते हैं, तो वे समझते हैं, यही अपना घर है, हम सुखी हैं! सुख-भावना हर मनुष्य में और हर प्राणी में रहती है, स्वातन्त्र्य की भावना भी हर प्राणी में है। परंतु सुखाभास के वश होकर कभी-कभी मनुष्य स्वातन्त्र्य की उपेक्षा करता है और सुख-प्राप्ति के लिए स्वातन्त्र्य का कुछ अंश छोड़ना पड़े, तो छोड़ने के लिए राजी होता है।

अंग्रेजों के साथ अंग्रेजी भाषा आयी, रेलवे, पोस्ट, तार, यंत्र, व्यवस्था आयी। दुनिया का ज्ञान बढ़ा, तो लोग समझने लगे, हम कुछ सुखी हैं। आजादी गयी, उसका दुख महसूस नहीं करते थे। लेकिन आगे हिन्दुस्तान का शोषण बहुत हुआ, उद्योग टूट गये, गाँव-गाँव दरिद्री बन गये, विद्या की चंद लोगों पर ही खैराती हुई, तो कुछ वैसे ही रहे। शिक्षित और अशिक्षितों के बीच दीवारें खड़ी हो गयीं। इस तरह का दुख प्रगट हुआ, तब हम लोगों को सूझा कि स्वराज्य चाहिए। पहले तो लोग सुख महसूस करते थे और स्वराज्य गया, उसका भान भी नहीं था। पारतन्त्र्य में जो दुख का अनुभव हुआ, उसके कारण स्वराज्य की इच्छा हुई। पर जब तक दुख का अनुभव नहीं आया, तब तक पारतन्त्र्य के साथ भी मेलजोल कर लिया। इस तरह हम स्वातन्त्र्य का महत्त्व जानते हुए भी आभासिक सुख के पीछे पड़ते हैं और स्वातन्त्र्य के महत्त्व को भूल जाते हैं।

आप शिक्षक हैं, अतः आपको सोचना चाहिए कि क्या हम स्वतन्त्रता का महत्त्व समझते हैं? कहना पड़ेगा कि स्वातन्त्र्य का बहुत ज्यादा महत्त्व हम समझे नहीं हैं। आज लोगों की हालत यह है कि हर बात की प्रतीक्षा सरकार से करते हैं। अपने में, अपने प्रयत्न में हमको विश्वास नहीं है। यह हमारा स्कूल है, तो क्या शिक्षकों को ऐसा विश्वास है कि इस स्कूल को हम बनायेंगे? कहना पड़ेगा कि ऐसा विश्वास नहीं है। सरकार से जो हुक्म आयेगा, उस पर हम अमल करेंगे! शिक्षण का हम स्वतंत्र विचार करते हैं और तदनुसार शिक्षण देते हैं, ऐसा आपको अनुभव नहीं आता है। अगर ऐसा अनुभव आता, तो माना जायेगा कि शिक्षकों को स्वराज्य का दर्शन हुआ। पहले आप अंग्रेजों की बात मानते थे, अब अपनी सरकार की मानते हैं, पर इतने से स्वराज्य का दर्शन नहीं होगा।

वास्तव में दुनिया का इतिहास देखने से मालूम होता है कि शिक्षकों ने देश को बनाया है। जर्मनी, रशिया को वहाँ के शिक्षक, प्रोफेसर, तत्त्वज्ञानी, साहित्यिकों ने रूप दिया है। आज हमारे देश का साहित्यकार क्या यह कह सकता है कि हम इस देश को रूप देने वाले हैं? हाँ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर महसूस करते थे कि "मैं अपने देश को रूप देता हूँ।" वे दिन पारतन्त्र्य के थे, दुख भी था। फिर भी रवीन्द्रनाथ अपने में स्वातन्त्र्य का अनुभव करते थे। तमिलनाड के भारतीयार दरिद्रय में मारे-मारे घूमते थे और सरकार के रोष से बचने के लिए भी इधर-उधर घूमना पड़ता था। परंतु महसूस करते थे, "मैं अपने देश को रूप दे रहा हूँ।" उनको किस एकेडमी से इनाम मिला था? उनको तो जरूरत भी थी; क्योंकि वे दरिद्र थे, पर उनको दारिद्रय की पर्वाह नहीं थी। ये तो आधुनिक जमाने के उदाहरण हैं, जहाँ देश गुलाम होने पर भी व्यक्ति आजादी महसूस कर सकते हैं। आजादी की लड़ाई में जो हजारों लोग जेल गये थे, वे जेल में भी अपने को आजाद समझते थे। इससे उल्टे, देश आजाद होने पर भी व्यक्ति अपने को गुलाम महसूस कर सकते हैं। आज देश तो आजाद हो गया, परंतु लोग आजाद नहीं हुए। यह नाममात्र की आजादी हो गयी, क्योंकि लोगों को अपने में उसका अनुभव नहीं हुआ। हिन्दुस्तान का किसान, मजदूर, शिक्षक जो लाचारी अंग्रेजों के जमाने में महसूस करता था, उससे भिन्न हालत आज नहीं है। क्या किसान कहता है कि मैं आजाद हुआ हूँ? क्या साहित्यिक महसूस करता है कि अपने देश को रूप दूँगा? बहुत सारे साहित्यिक सरकार के आश्रय में बहुत खुश रहते हैं। पर तुलसीदास को क्या सरकारी आश्रय था? या शंकराचार्य को, कबीर को सरकार का आश्रय था? तेलुगु महाकवि पोतना ने भागवत्-ग्रंथ लिखा है। १०-२० साल की मेहनत से ग्रंथ लिखा। मित्रों ने सलाह दी कि वह ग्रंथ राजा को समर्पण किया जाय, तो तुम्हारी जिंदगी भर की फिक्र मिट जायगी। उन्होंने कहा, "भगवान् का चरित्र लिखा सो क्या वह मनुष्य को अर्पण हो सकता है? मुझसे यह नहीं बनेगा। खेती मैं करता हूँ, मुझे वह प्रिय है। उसमें से मुक्त होकर क्या करना है? मुक्त तो होना है काम, क्रोध, आदि के विकारों से! उसीके लिए भागवत् लिखा। वह राजा को समर्पण करूँ, तो मेरी सब मेहनत मिटेगी। ऐसे वे अपने हृदय में आजादी अनुभव करते थे। ऐसी अनुभूति जिसको होती है, वही स्वतन्त्र है। वह अनुभूति नहीं आती, तो चाहे देश में स्वराज्य मिला हो, हमको स्वराज्य नहीं मिला है। हमको ऐसी अनुभूति नहीं आती, तो देश का स्वराज्य याने आभास है, ऐसा ही समझना चाहिए।

शिक्षक एक स्कूल में काम करते हैं। सब मिल कर विद्या देते हैं, तो उनमें आपस-आपस में परिवार की भावना क्यों नहीं होनी चाहिए? सरकार अलग-अलग वेतन देती है, परंतु वे तय करें कि हरेक के परिवार में कितने लोग हैं, यह देख कर सब मिल कर हम वेतन आपस में बाँट लेंगे। ऐसा करने से सरकार क्या रोकेगी? वह रोकती नहीं, परंतु स्वयं वैसा करने की उसे हिम्मत नहीं है। हाँ, सरकार नियम बना देती, तो हो सकता है। ज्यादा शिकायत भी नहीं रहेगी। पर हम स्वयं कुछ कर सकते हैं, ऐसा आभास न हो, तो वह मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, गुलाम है। आजाद वह है, जो पुरुषार्थ की शक्ति रखते हैं। हम कोई पुरुषार्थ कर सकते हैं, ऐसा आज भास ही नहीं होता है। हम परवश हैं, परिस्थितिवश होकर करना पड़ता है, ऐसा जो समझते हैं, वे परिस्थिति अच्छी हो, फिर भी आजाद नहीं हो सकते। कल मान लो कि सरकार ने परिवार के मनुष्य देख कर वेतन दिया, तो उससे साम्य आयेगा, परंतु साम्य-गुण नहीं आयेगा, साम्ययोग नहीं आयेगा। परंतु शिक्षक स्वयं आज की विषम परिस्थिति में वेतन का समान बँटवारा कर लेते हैं, तो वह साम्य-गुण होगा और वे देश का नेतृत्व करेंगे। सरकार वेतन देती है, फिर भी शिक्षक समान रूप से बाँट लेते हैं, तो फिर लड़के कहेंगे, "हमारे गुरुजी साम्ययोगी हैं। समानता पर आधार रख कर आज के समाज को बदलना चाहते हैं। क्रांति के अग्र-दूत हैं।" गणित, भूगोल जैसे आज तक वे सिखाते थे, वैसे ही सिखायेंगे, लेकिन विद्या में वीर्य पैदा होगा। वह अध्ययन तेजस्वी होगा। लड़के कहेंगे, "हम महान् गुरु के शिष्य हैं।" स्कूल में ऐसे शिक्षक, शिक्षिकाएँ होंगी, तो हिंदुस्तान में हवा पैदा करेंगे। वे गणित, भूगोल, इतिहास के शिक्षक तो रहेंगे ही, लेकिन वे शिक्षक जीवन-शास्त्र के अध्यापक बनेंगे, वे स्वयं अपना मार्ग देखेंगे और दुनिया को दिखायेंगे। आप विचार करके सब मिलजुल कर के रहते हैं, सबका वेतन इकट्ठा करके बाँट लेते हैं, तो वाणी में तेज आयगा, फिर गाँव के लोगों को समझा सकते हैं।

लोगों से आप कहेंगे कि ग्रामदान करो, सबकी जमीन एकत्र करके बाँट लो। लोग कहेंगे, यह करने से क्या होगा? तो आप अपने अनुभव से उनको समझा सकते हैं। आप फिर उस पर अधिक सोचेंगे। आपको लगेगा, हमने साम्ययोग तो बनाया, परंतु वह ऊपर के लेवल का है। हिंदुस्तान का लेवल इतना ऊँचा नहीं है, दरिद्री है, तो हम अपने वेतन में से संपत्तिदान मे पाँच प्रतिशत देंगे। तब आपने क्रांति-कार्य में एक कदम आगे बढ़ाया, यह माना जायेगा, इस तरह स्कूल एक महान् क्रांतिकारक बनेना। सूर्य की किरणें जैसे चारों तरफ फैलती हैं, वैसे ही यहाँ से क्राँति-विचार चारों दिशा में फैलेगा। यह सब शिक्षक-शिक्षिकाएँ करेंगी, तो वे अपने में स्वातंत्र्य महसूस करेंगे। आज सरकार हमको बनाती है, तो बाद में सरकार को हम बनायेंगे, समाज को हम बनायेंगे, ऐसी लोगों की हिम्मत होगी, तो देश आजाद होगा। फिर लोग कहेंगे कि सैन्य के लिए ज्यादा रुपये खर्च नहीं होने चाहिए। उस हालत में देश में फूट नहीं रहेगी। जहाँ देश में फूट नहीं, वहाँ ज्यादा ताकत होती है। कोई किसी पर हमला नहीं करेगा। सब एकरूप होकर रहेंगे, तो सैनिक-शक्ति लोग क्यों चाहेंगे? लेकिन यह सारा हम कर सकते हैं, ऐसा महसूस होना चाहिए। लोग बाबा से पूछते हैं कि पाँच करोड़ जमीन इस साल के आखिर में हो जायगी! क्या मालकियत मिट सकती है? बाबा कहता है, हाँ, जरूर होगा, क्योंकि बाबा अपने में आजादी महसूस करता है, वह सारी मालकियत तोड़ कर निकला है, हिम्मत रखता है कि मैं इस देश को ऐसा रूप दूँगा! ऐसी शक्ति हरेक में आ सकती है। वैसा होगा, तो देश सचमुच में आजाद होगा, एक देश आजाद होता है, तो अड़ोस-पड़ोस के देश में भी स्वातंत्र्य की हवा बह सकेगी।*

*शिक्षक और शिक्षिकाओं के साथ। कोड़वायूर, पालघाट, ३-६-'५७

www.vinoba.in

ग्रामदान की गंगा में–

–इंदौर जिले में सन् '५७ के अंत तक के लिए अखंड भूदान-पदयात्रा प्रारंभ हो गयी है। गाँव में श्रम करके प्राप्त अनाज को पीस कर ही पदयात्री जीवन-निर्वाह करते हैं। पालिया ग्राम ग्रामदान में मिला था। अब १९ परिवारवाला १७५ बीघा भूमि का "गुरदाखेडी" और २५ परिवारवाला ६५० बीघा भूमि का "बड़ोदिया माली", ऐसे दो गाँव ग्रामदान मिले हैं।

–मिरजापुर जिले के कोटा क्षेत्र में सरपतवा ग्राम ता० २० जून को ग्रामदान में मिला। शुरू में राबर्ट्सगंज सर्वोदय-स्वाध्याय-मंडल के संचालक श्रीमोतीसिंह नेगीजी का प्रेरणादायक भाषण हुआ और बाद में श्री सेखनराम नामक एक वृद्ध आदिवासी सज्जन ने 'ग्रामदान ज़िन्दाबाद' का नारा लगा कर अपनी सारी भूमि का विसर्जन किया। तदुपरान्त समग्र ग्रामवासियों ने भूस्वामित्व का विसर्जन किया।

–वर्धा जिले की आर्वी तहसील में हराशी व सुकली (भादोड़) ये दो गाँव ग्रामदान में मिले हैं।

विद्यार्थी भूदान-अखंड पदयात्रा

–द्वारका से कलकत्ता के लिए निकली हुई विद्यार्थियों की अखंड भूदान-पदयात्रा को २१ जून तक १०३८ मील की यात्रा में २८६ बीघा भूदान, १०८१) वार्षिक का संपत्ति-दान, ७५) अनाज, ३ बखर, ७ हल, ४ बैल और २५१) साधन-दान में मिले। ५००) की साहित्य-बिक्री हुई। ६९ ग्राहक बने। पदयात्रा सतना जिले से होकर उत्तर प्रदेश में पहुँची है।

अन्य-समाचार :

–सर्वोदय-संमेलन से लौटने के बाद ४० कार्यकर्ताओं ने अमरावती जिले की मोर्शी तहसील में २ से ८ जून तक १५ गाँवों में भूदान-प्रचार किया। अनुभव हुआ कि भरसक कोशिश करने पर ये गाँव ग्रामदानी बन सकते हैं। कमी सिर्फ कार्यकर्ताओं की है। स्थानिक कार्यकर्ताओं को विचार-प्रचार में जुटा दिया गया है।

–मथुरा जिले के ६० कार्यकर्ताओं का सर्वोदय-शिविर श्री कपिलभाई की अध्यक्षता में ता. १९-२० जून को कोसीकलाँ में हुआ। सर्व श्री दादा धर्माधिकारीजी और विमला बहन के प्रवचन हुए। २१ जून को ८ कार्यकर्ताओं की टोली और २४ जून को दूसरी टोली पदयात्रा के लिए निकल पड़ी।

–ता० ४-५ मई को लखनऊ में अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा-परिषद् का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन श्री बालकोबाजी भावे की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, जिनमें कहा गया कि सन् '५७ की सर्वोदय-क्रांति में प्राकृतिक चिकित्सा को स्थान दिया जाय। बी० सी० जी० का प्रयोग बंद किया जाय, माध्यमिक शिक्षा में प्राकृतिक चिकित्सा विषय अनिवार्य करें, अणु-उद्जन बमों का परीक्षण बंद कर दें, प्राकृतिक चिकित्सा-कॉलेज की स्थापना करें, आदि माँगें भी पेश की गयीं।

अ० भा० पदयात्री-दल का परिचय

अखिल भारत भूदान-पदयात्री-दल के साथियों का परिचय नीचे दिया गया है। यह दल आजकल उत्तर प्रदेश में भ्रमण कर रहा है तथा ता. २८–६ से २–७ तक बाराबंकी जिले की यात्रा संपन्न हो गयी है।

(१) श्री श्रीकान्त आपटे—दल के नायक। कृषि-खेती के विज्ञाता हैं। ३१ डिसमिल भूमि पर यंत्र अथवा पशु के बिना फावड़ा और कुदाली से खेती की, प्राकृतिक खाद का प्रयोग किया, अपना भोजन व वस्त्रादि खर्च चला कर ४०० रुपये वार्षिक बचत करते रहे! कला-प्रेमी हैं। (२) श्री चेरियन थॉमस—(केरल) पूरे संसार का पर्यटन किया है। पहले अखिल भारत काँग्रेस-कमेटी में पार्लिया-मेण्टरी बोर्ड-विभाग के मंत्री थे। अपनी एक लाख की पूरी संपत्ति भूदान में अर्पण की है। (३) श्री करियन पाल—(केरल) ग्रामोद्योग-विशारद तथा मधुर गायक हैं। (४) श्री पूर्णचन्द्र प्रधान—(बंगाल) नयी तालीम, सेवाग्राम के सफाई-कार्यकर्ता हैं। (५) श्री लक्ष्मीचन्द—(पंजाब) कालेज के विद्यार्थी थे। पढ़ना छोड़ दिया। इनके पिता ने अपनी कुल भूमि दान में दी है। (६) श्री ईश्वर भाई—गुजरात के अध्यापक हैं। (७) श्री सीताराम—राजस्थान के खादी-कार्यकर्ता हैं।

भूदान-आंदोलन की पत्र-पत्रिकाएँ

भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में भूदान-आन्दोलन का प्रचार करने वाले हमारे साप्ताहिक, दशवारिक, पाक्षिक, मासिक आदि की जानकारी नीचे दी जा रही है। साथ ही, पत्रिकाएँ कितने गाँवों में पहुँच रही हैं तथा कुल ग्राहक-संख्या कितनी है, यह भी दिया है। ग्राहक-संख्या में वे अंक भी शामिल हैं, जो एजंटों आदि द्वारा बिकते हैं। **—संचालक, अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, प्रकाशन-विभाग, काशी**

क्रम	भाषा	नाम	पता	शुल्क	गाँव	ग्राहक
१.	हिन्दी	दैनिक प्रार्थना-प्रवचन (विनोबा) (साइक्लोस्टाइल होकर)	राजघाट, काशी	२०)	२८०	३०५
२.	,,	भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक)	,, ,,	५)	७९२८	१४३०२
३.	,,	ग्रामराज (पाक्षिक)	किशोर निवास, जयपुर	२)	१४९२	३६७८
४.	उर्दू	भूदान-तहरीक (पाक्षिक)	राजघाट, काशी	२)	४३७	८५३
५.	,,	सर्वोदय-विचार-पत्रिका (पाक्षिक)	जलंधर	३)	३०८	६७५
६.	अंग्रेजी	भूदान (साप्ताहिक)	३६१, सदाशिव, पूना–२	६)	९७७	११००
७.	,,	सर्वोदय (मासिक)	श्रीनिवासपुरम्, तंजोर	३)	३२०	१२६८
८.	,,	ग्रामदान (मासिक)	दिवान बँगलो, जयपुर (उड़ीसा)	२)		३७५
९.	गुजराती	भूमिपुत्र (दशवारिक)	घडियाली पोल, बडौदा	३)		९४९०
१०.	मराठी	साम्ययोग (साप्ताहिक)	वर्धा	४)	२०००	३०१५
११.	,,	भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक)	३६१, सदाशिव, पूना-२.	३)	८००	४०००
१२.	,,	सेवक (मासिक)	परंधाम, पवनार (वर्धा)	४)	११५	२७५
१३.	,,	सर्वात्मा (साप्ताहिक)	१८८ व्यंकटपुरा, सातारा	३)	१४०	४००
१४.	सिंधी	धरती माता (पाक्षिक)	झेड, १३ आदीपुर (कच्छ)	३)	५०	१२००
१५.	पंजाबी	भूदान (पाक्षिक)	जलंधर (पंजाब)	३।)	२०६	२२०
१६.	बंगला	भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक)	सी-५२, कालेज स्ट्रीट मार्केट, कलकत्ता	५)		१६१३
१७.	तेलगु	भूदानमु (पाक्षिक)	गांधी-भवन, हैदराबाद दक्षिण	३)	२९७	१०९७
१८.	तमिळ	सर्वोदयम् (मासिक)	श्रीनिवासपुरम्, तंजोर	३)	११००	२३२१
१९.	,,	ग्रामराज्यम् (साप्ताहिक)	खादी-वस्त्रालय, रतन बजार, मद्रास	६)	१०००	६६४२
२०.	मलयालम्	भूदान-काहलम् (साप्ताहिक)	कज्झीकोड़–१	४॥)		३९१६
२१.	कन्नड़	भूदान (साप्ताहिक)	१७ पहली मैन रोड, चामराजा पेट, बेंगलोर	३)	९४६	१९००
२२.	उड़िया	ग्रामसेवक (दशवारिक)	बाखराबाद, कटक	३)	१४८९	१६००
२३.	,,	ग्रामदान (मासिक)	भूपत स्ट्रीट, जयपोर (उड़ीसा)	२)	९०	२५०
२४.	असमी	भूदान-यज्ञ (पाक्षिक)	पान बाजार, गौहाटी	३)	४००	१४७३
					कुल	६१९६८

–पिछले अंक में "नये संस्करण निकले हैं", ऐसा 'प्रकाशन-समाचार' में हमने सूचित किया था। दरअसल वे पुस्तकें अभी छपने के लिए दी हैं; प्रकाशित नहीं हुई हैं। प्रकाशित होते ही पुनः सूचित कर देंगे। **व्यवस्थापक**

श्री विनोबाजी का और श्री वल्लभस्वामीजी का डाक-तार का पता :
मार्फत : सर्व-सेवा-संघ,पो० परली PARLI (PALGHAT : KERAL)

विषय-सूची

१.	आद्य आचार्य शंकर की अद्वैत भूमि में !	महाकवि वल्लतोल	१
२.	ग्रामदानी गाँवों का निर्माण-कार्य: महत्त्वपूर्ण प्रश्न	अ० वा० सहस्रबुद्धे	२
३.	तंत्र-मुक्ति और निधि मुक्ति के बाद !	धीरेंद्र मजूमदार	३
४.	कर्नाटक-प्रदेश का परीक्षा-काल !	बाबू कामत	३
५.	गांधीजी की राजनीति के मूलाधार	स्व० भारतन् कुमारप्पा	४
६.	केवल विचार-प्रचार ही पर्याप्त नहीं है !	विनोबा	५
७.	बिना हिम्मत और पुरुषार्थ के 'स्वराज्य' कैसा !	,,	६
८.	सर्वोदय की दृष्टि :		
	१. स्व० भारतन्जी	लक्ष्मीनारायण भारतीय	६
	२. हंगेरी से सबक !	,,	६
९.	बाबा राघवदासजी की पावन यात्रा से–	शंकरदेव 'मानव' : लक्ष्मीचंद जैन	७
१०.	पंजाब की चिट्ठी	यशपाल मित्तल	८
११.	कार्यकर्ता की ताकत कैसे बढ़े !	विनोबा	९
१२.	ग्रामदान की राह पर—	बाबू कामत	१०
१३.	ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी	विनोबा	१०
१४.	शिक्षक सच्ची आजादी कैसे ला सकते हैं !	,,	११

सिद्धराज ढड्ढा, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण-प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी, टे० नं० १२८५

www.vinoba.in